अंबवा की डार पे कूके कोयलया

डॉ॰जयभगवान गोयल

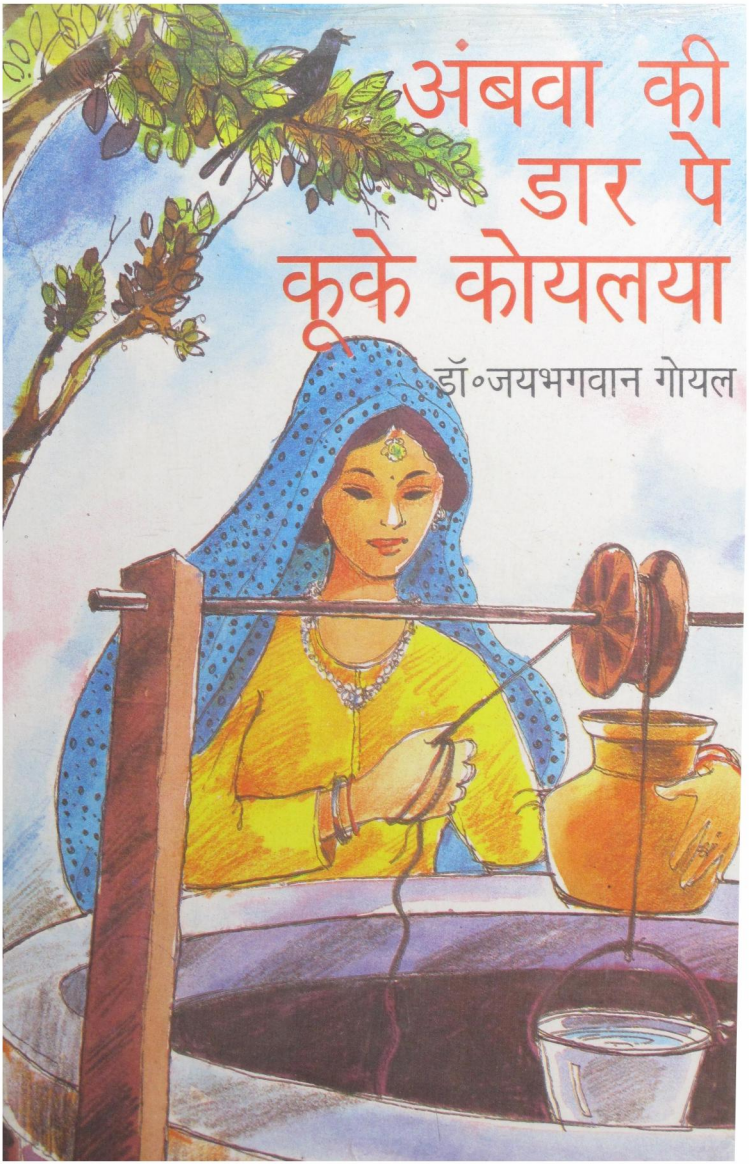

बिना साहिल का समन्दर

हिन्दी साहित्य में डॉ० जयभगवान गोयल एक मोतबर और कदावर नाम है जो किसी भी परिचय का मोहताज नहीं है। उनके हमपल्ला ऐसी इखलास व मुहब्बत, तहज़ीब और इन्सानियत के रंगारंग में रची-गुंथी और बुनी हज़ार तलाशो बिसयार के बाद खाल-खाल देखने को नसीब होती है। वे ख्यालो अमल के सौन्दर्य से सजी-धजी बागोबहार ज़िन्दगी जीने वाले महज़ एक सर्जक ही नहीं बल्कि बेहतरीन सुलझे हुए इन्सान भी हैं। मेरे नज़दीक एक अच्छा साहित्यकार होने के लिए एक अच्छा इन्सान होना भी लाज़मी और ज़रूरी हैं। एक इन्सान जिन खसुसीयात और ओसाफ और दिलो ज़हनोनज़र की महक से साहित्यकार कहलाने का मुसतहिक है, वे सब अनासर डॉ० जयभगवान गोयल की ज़ात में रसे-बसे और समाए हुए हैं। डॉ० जयभगवान गोयल एक तहदार शख़्सीयत और कई पहलूओंदार व्यक्ति हैं जिनकी विद्वत्ता का घेराव व अहाता करना हथौड़े से पहाड़ तोड़कर दूध की नहर लाने के बराबर है।

"मत सहल इसे जानों, फिरता है फलक बरसों।
तब खाक के पर्दे से इन्सान निकलता है।।"

डॉ० जयभगवान गोयल को साहित्य के क्षेत्र में यह ऊंचा मुकाम किसी के रहमोकरम या इनाम में नहीं मिला, बल्कि उन्होंने अपनी अनथक निरन्तर कला साधना और चिन्तन से अर्जित किया है।

"दाग़ को कौन देने वाला था।
जो दिया ए ! खुदा दिया तूने।।"

डॉ० जयभगवान गोयल साफ-सुथरी और कड़वाहट की हद तक साफ बात कहते हैं। दो रंगी ज़िन्दगी जीना उनके लिए हराम है।

"हज़ार खतरे हों लेकिन ज़ुबां हो दिल की रफ़ीक।
यही रहा है हमेशा कलन्दरों का तरीक़।।"

अंबवा की डार पे कूके कोयलया

अंबवा की डार पे कूके कोयलया

डॉ० जयभगवान गोयल
एमरेटस फैलो (यू. जी. सी.)
पूर्व प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय
पूर्व अध्यक्ष, हरियाणा विद्यालय शिक्षा बोर्ड

आत्माराम एण्ड संस
दिल्ली ▭ लखनऊ

© आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली-110006

प्रकाशक : आत्माराम एण्ड संस
कश्मीरी गेट, दिल्ली-110006

शाखा : 17, अशोक मार्ग, लखनऊ

ISBN : 81-7043-385-1

मूल्य : 110.00

प्रथम संस्करण : 1999

शब्द-संयोजक : ओम लेज़र प्रिंटर्स, शाहदरा, दिल्ली-110032

मुद्रक : विशाल प्रिंटर्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110 032

AMBWA KI DAAR PE KOOKEY KOYALYA
by Dr. Jai Bhagwan Goyal

दो शब्द

पिछले चार दशकों में मध्ययुगीन साहित्य से संबंधित शोध और समीक्षा की मेरी 30 पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं; जिनमें मेरी सौन्दर्यपरक मानवतावादी समीक्षा दृष्टि प्रचुरता से अभिव्यंजित हुई है। 'साहित्य चिंतन', 'मध्ययुगीन काव्य : नया मूल्यांकन' तथा 'संत साहित्य : नये आयाम' में मेरे गवेषणात्मक एवं समीक्षात्मक निबंध ही संकलित हैं। 'अंबवा की डार पे कूके कोयलया' इनसे भिन्न प्रकार की निबंधावली है।

इसमें विचारात्मक, चरितात्मक, वर्णनात्मक, विवरणात्मक तथा व्यंग्यात्मक निबंधों के अतिरिक्त रिपोर्ताज़, संस्मरण, व्यक्ति–रेखाचित्र, यात्रा-विवरण तथा भेंट वार्ताएं भी समाविष्ट हैं। इन सभी रचनाओं में युग-बोध के साथ-साथ लालित्य तत्त्व भी समुचित रूप से उद्भासित है।

'अंबवा की डार पे कूके कोयलया' में मैंने स्मृतियों के झरोखों से अपने जीवन की इंद्रधनुषी छवियों को निहारने की चेष्टा की है। इन रचनाओं में मेरे संवेग, मेरे विचार, मेरी जीवन दृष्टि, मेरे सरोकार, विश्वास और मान्यताओं का समवेत स्वर व्यंजित है तथा मेरे व्यक्तित्व के विभिन्न आयाम प्रस्फुटित हुए हैं।

यहां संवेगों में जितनी विविधता है, उतनी ही विविधता इन रचनाओं की भाषा, अभिव्यक्ति शैली और शिल्प में है।

'अंबवा की डार पे कूके कोयलया' मेरे लिए स्वयं को देखने और समझने का एक आईना है।

दीपावली,
19 अक्तूबर, 1998

—जयभगवान गोयल

क्रम

1. भारतीय संस्कृति का तीर्थ—हरियाणा 9
2. मिटी धुंध जग चानन होइआ 25
3. जहां तहां तुम धरम बिथारौ 33
4. अंबवा की डार पे कूके कोयलया 43
5. झहरि झहरि झीनी बूंद परती है 46
6. सौंदर्य की भारतीय परिकल्पना 50
7. फिल्मी मुकाबले 53
8. सांस्कृतिक प्रदूषण 57
9. शक्ति को है नमन 60
10. कुरुक्षेत्र का सूर्यग्रहण पर्व 63
11. रामपुर बुशहर का लवी मेला 70
12. छात्रों से बातचीत 74
13. सौंदर्य स्थली छछरौली 79
14. बातें तो बातें हैं, बातों से क्या? 86
15. इनसे बचें 89
16. हम नहीं क्यों नहीं कह सकते 95
17. अंधविश्वास कितने सत्य....? 99
18. उस्ताद पन्नी लाल 103
19. फैज़ अहमद 'फैज़' से मुलाकात 107
20. मुंशी प्रेमचंद के उपासक भाई नानक सिंह से एक भेंट 111

भारतीय संस्कृति का तीर्थ : हरियाणा

एक विशिष्ट ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक इकाई के रूप में हरियाणा का अस्तित्व अत्यंत प्राचीन काल से मान्य रहा है। 'हरियाणा' के लिए प्राचीन वाङमय में 'ब्रह्मावर्त', 'ब्रह्मर्षि देश' एवं 'आर्यवर्त' आदि नाम भी व्यवहृत होते रहे हैं।

वेदों, ब्राह्मणों, स्मृतियों एवं पुराणों में यह प्रदेश एक विशिष्ट धर्मभूमि के रूप में प्रसिद्ध रहा है। 'मनुस्मृति' में इसे 'ब्रह्मावर्त' देश कहा गया है क्योंकि यहां ब्रह्मवेत्ता विद्वानों से आचरण और चरित्र आदि की शिक्षा ग्रहण करने के लिए भू-मण्डल से मानव आया करते थे। सरस्वती और दृषद्वती (घग्घर) नाम की देव नदियों के हाथों में यह प्रदेश कमल के सदृश शोभित होता था।

हरियाणा का प्राचीनतम उल्लेख रोहतक नगर के समीप बोहड़ नाम के स्थान से उपलब्ध विक्रम संवत् 1337 के एक शिलालेख में मिलता है, जहां इस शब्द का रूप 'हरियानक' है। हरियाणा शब्द का संबंध कुछ विद्वान 'हर' (शिव) से जोड़ते हैं और कुछ 'हरि' (कृष्ण) से। इसकी हरियाली में भी इसके नाम की सार्थकता खोजी जाती है।

प्राचीन संस्कृत साहित्य में भी हरियाणा के विभिन्न नगरों, निकट की पर्वतमालाओं, वनों, झीलों, सरोवरों, तीर्थों, जनजातियों आदि का जो विवरण उपलब्ध है, उससे इस प्रदेश की सीमाओं की स्थिति एवं स्वरूप का निर्धारण किया जा सकता है।

वर्तमान हरियाणा राज्य के पूर्व की सीमाएं यमुना नदी द्वारा निर्धारित हैं। उसके पश्चिम में पंजाब और राजस्थान हैं, उत्तर में पंजाब का कुछ भाग और हिमाचल प्रदेश एवं शिवालिक की पहाड़ियां हैं। दक्षिण में राजस्थान का मरुस्थल और अरावली की पहाड़ियां हैं।

हरियाणा भारतीय संस्कृति का मूल केंद्र है और परम्परानुसार इसे आदि सृष्टि का जन्म-स्थान माना जाता है। शिवालिक की उपत्यका में पिंजौर-कालका के निकट पाषाण-काल के जो उपकरण प्राप्त हुए हैं, उनसे मानव के प्राचीनतम अस्तित्व के प्रमाण मिलते हैं। यह भी मान्यता है कि मानव-जाति की उत्पत्ति जिन वैवस्तु मनु से हुई, वे इसी प्रदेश के राजा थे। 'अवन्ति सुंदरी कथा' में इन्हें स्थाणवीश्वर निवासी कहा गया है। पुरातत्त्ववेत्ताओं के अनुसार आद्येतिहासकालीन-प्रागूहड़प्पा, हड़प्पा, परवर्ती हड़प्पा एवं चित्रित-धूसर मृदभांड संस्कृतियों के विशद प्रमाण हरियाणा के वणावली, सीसवाल, कुणाल, बालू, मिर्जापुर, दौलतपुर और भगवानपुरा आदि स्थानों के उत्खननों से प्राप्त हुए हैं। इन स्थानों से प्राप्त स्थापत्य सम्बन्धी अवशेषों, मृदभाण्डों, ताम्रनिर्मित वस्तुओं, आभूषणों तथा दैनिक जीवन से सम्बन्धित अन्य पदार्थों से हरियाणा की इन कालों की सांस्कृतिक एवं भौतिक समृद्धि का आभास मिलता है। इन प्रमाणों से विदित होता है कि परवर्ती हड़प्पा संस्कृति के लोग कच्ची ईंटों के मकानों में रहते थे। इनके आभूषण बहुमूल्य प्रस्तर, पियांस और पक्की मिट्टी के बने हुए होते थे। वे अपने अस्त्र-शस्त्र तांबे के बनाते थे। ताम्र भाले के फलक, खैनी, सुई, चूड़ियां, मछली पकड़ने के कांटों के अतिरिक्त भट्ठियां, घिसने के पत्थर, अस्थि निर्मित उत्कीर्णक भी इन उत्खननों से प्राप्त हुए हैं।

कुरुक्षेत्र जिले के भगवानपुरा के महत्त्वपूर्ण उत्खनन से चित्रित धूसर मृदभांड संस्कृति के विषय में महत्त्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है। उत्खनन से विदित हुआ है कि इस संस्कृति के लोग पहले अर्ध-चन्द्राकार झोपड़ियां बनाते थे जिसकी छतें बैंत को लीपकर बनाई जाती थीं। फिर मिट्टी के मकान बनाए गए और इसके पश्चात् पक्की ईंटों के मकान बनाए जाने लगे। इतिहासकाल में विभिन्न स्थानों से प्राप्त अभिलेखों, सिक्कों, मुद्रा एवं मुद्रा-छापों, स्थापत्य एवं मूर्तियों संबंधी कला-अवशेषों से हरियाणा में इतिहासकाल से लेकर अब तक के विविध तथ्यों एवं स्थितियों के प्रमाण उपलब्ध हुए हैं, जो हरियाणा के निवासियों की विभिन्न कालों की सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं कलात्मक गतिविधियों, अभिरुचियों एवं उपलब्धियों के परिचायक हैं।

खरखौदा, सोनीपत, पानीपत, खोकराकोट, हांसी, सिरसा, महम, अग्रोहा

और बघोला आदि स्थानों से प्राप्त सिक्कों से इतिहासकालीन यौधेय गणतन्त्र की महत्ता पर प्रकाश पड़ता है। इन यौधेयों का ई.पू. द्वितीय शती से ईसा की चतुर्थ शती के मध्य तक शासन रहा और सम्भवतः खोकराकोट (रोहतक) इनकी राजधानी थी, जैसा कि वहां से उपलब्ध सैकड़ों सिक्कों और सांचों से विदित होता है। इन ठप्पों व सिक्कों पर "यौधेयनामं बहुधान्यक" के लेख अंकित हैं। ये सिक्के ईसा से कई शती पूर्व के हैं। इन सिक्कों पर शिव के नंदी की मूर्ति और यज्ञीय यूप (विजय स्तंभ) भी अंकित हैं। दूसरी ओर हाथी और त्रिकोण ध्वज है। इन प्राचीन मुद्राओं में शिव अपने वाहन नंदी के साथ भी विद्यमान हैं।

हरियाणा में गणतंत्रीय प्रणाली प्राचीन काल से प्रचलित रही है। महाभारत काल में भी यहां अनेक गणराज्य थे। रोहतगी और अग्रोहा के गणराज्यों की बड़ी प्रतिष्ठा रही है। हरियाणा की सर्वखाप पंचायत भी गणतंत्रीय पद्धति पर आधारित थी। अग्रवाल और रोहतगी रस्तोगी बनियों की पंचायत में आज भी वह गणतंत्रीय पद्धति मौजूद है।

हरियाणा वीरभूमि है। यहीं सत्य और असत्य, नीति और अनीति, न्याय और अन्याय का निर्णायक महाभारत युद्ध हुआ था, जिसमें दुष्टों और दुराचारियों के विनाश के लिए धर्म योद्धा अर्जुन को उत्साहित करते हुए भगवान् कृष्ण ने कहा था कि हे अर्जुन! तू युद्ध के लिए उठ! क्योंकि इस धर्मयुद्ध में विजय प्राप्त कर तू पृथ्वी का भोग करेगा और यदि वीरगति को प्राप्त हुआ तो स्वर्ग को प्राप्त करेगा :–

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः।।

(गीता)

भगवान् कृष्ण का यह ओजस्वी संदेश हरियाणा के वीरों को सदा स्मरण रहा और वे निरंतर अत्याचारी आक्रमणकारियों का साहस और निर्भीकता से सामना करते रहे। 125 ईसा पूर्व से लेकर 375 ईसवी तक सतलुज और यमुना के बीच का सारा प्रदेश एक सुसंगठित शक्तिशाली एवं समृद्ध गणराज्य था, जिस पर वीर यौधेयों का शासन था। यौधेयों के इस राज्य को 'बहुधान्यक' कहा जाता था जिससे विदित होता है कि यह प्रदेश अत्यंत उपजाऊ और हरा-भरा था, धन-धान्य से परिपूर्ण था। यौधेय जाति अपनी वीरता के लिए

विख्यात थी। महाक्षत्रप रुद्रदामा के गिरनार अभिलेख में, जो शक संवत् 72 में लिखा गया था, यौधेयों की वीरता को इन शब्दों में स्वीकार किया गया है :–

"सर्वक्षत्राविष्कृतवीर शब्द जातोत्सेका विधेयानां यौधेयानाम्"– अर्थात् "उन यौधेयों का जो सब क्षत्रियों में वीरता की घोषणा कर देने के कारण गर्वपूर्ण होने से अधीनता स्वीकार करने को उद्यत नहीं थे।" इन वीर योद्धाओं की जो मुद्राएं प्राप्त हैं, उनमें ये शब्द भी अंकित हैं–"यौधानां जयमन्त्रधराणाम्" अर्थात् ये मुद्राएं उन यौधेय वीरों की हैं जो विजय प्राप्त करने का मंत्र जानते हैं।

निःसंदेह, यौधेय स्वतंत्रता, अदम्य साहस और शौर्य के प्रतीक थे। इन्होंने गणतंत्रीय व्यवस्था की स्थापना की और इनका गणतंत्र बहुत ही समृद्ध एवं शक्तिशाली था। इन्होंने नागों और कुषाणों को भारी क्षति पहुंचाई थी।

"यौधेयनाम बहुधान्यक" और "यौधेय गणस्य जय" आदि अभिलेखों तथा सिक्कों पर अंकित देवताओं के सेनापति कार्तिकेय की आकृति से भी इनकी शक्ति, सम्पन्नता एवं गणतंत्रीय प्रणाली का पता चलता है।

इसी समय यहां कुषाणों के शासन के प्रमाण भी उपलब्ध हैं। कुरुक्षेत्र में (थानेसर टीला) में इस समय हो रहे पुरातत्त्व संबंधी उत्खनन से भी कुषाणकालीन अवशेष मिले हैं। हरियाणा में गुप्त वंश के शासन के भी, विशेष रूप से समुद्रगुप्त और चन्द्रगुप्त द्वितीय के शासनकाल के कुछ प्रमाण मिले हैं। हरियाणा को हूणों के आक्रमणों का भी सामना करना पड़ा था।

छठी शती में स्थाणवीश्वर (थानेसर) में पुष्पभूति वंश का शासन स्थापित हुआ, जिसके सबसे अधिक प्रतापी राजा हर्षवर्धन थे। इनका शासनकाल इस वंश की शक्ति और समृद्धि का चर्मोत्कर्ष था। बाणभट्ट ने 'हर्षचरित' व 'कादंबरी' में इनके शासनकाल की सांस्कृतिक एवं भौतिक समृद्धि का विस्तार से वर्णन किया है। चीनी यात्री ह्वेन सांग भी यहां आया था और उसने कुरुक्षेत्र के वैभव एवं सांस्कृतिक जीवन की प्रशंसा की है। हर्ष के राज्यकाल में ही यद्यपि थानेसर से राजधानी कन्नौज चली गई थी तथापि इस स्थान का सांस्कृतिक महत्त्व अक्षुण्ण बना रहा।

इसके पश्चात् के प्राप्त साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि यह प्रदेश गुर्जर प्रतिहारों के अधीन था। इस वंश के दो प्रतापी सम्राटों भोज एवं महेन्द्रपाल

के अभिलेख पेहवा से प्राप्त हुए हैं। इनके पश्चात् यहां 11वीं शती में तोमर वंश का तथा 12वीं शती में चौहानों का आधिपत्य रहा। इस समय यह प्रदेश वैभवशाली, कृषि एवं आर्थिक दृष्टि से समुन्नत था। इसी काल में यवन आक्रमण होते रहे और हरियाणा के वीरों ने उनका साहसपूर्वक सामना किया। 12वीं शती में यवनों द्वारा दिल्ली को विजय कर लेने पर यह क्षेत्र भी यवन-सुल्तानों के अधीन हो गया और बाद में यहां मुगलों व अन्य वंशों के नवाबों आदि का शासन रहा।

हरियाणा दिल्ली का निकटवर्ती वह प्रदेश है जहां से होकर यवन आक्रमणकारी आगे बढ़ते थे। कुरुक्षेत्र, तरावड़ी और पानीपत के मैदानों ने अनेक वज्रपातों को अपनी छाती पर झेला है और आज भी अनेक अवशेष इस क्षेत्र के वीरों की शौर्यगाथा गर्व से सुना रहे हैं। जब तैमूर ने अढ़ाई लाख सेना लेकर भारत पर आक्रमण किया था और भारतीयों पर अमानुषिक अत्याचार ढाये थे तो हरियाणा की सर्वखाप पंचायत के 80 हजार वीर पुरुषों और 40 हजार वीरांगनाओं ने जोवराज सिंह के नेतृत्व में 'हरहरमहादेव' के गगन भेदी नारे लगाते हुए उसकी सेना के एक लाख पचहत्तर हजार सैनिकों का संहार कर भारतीय वीरता के गौरव की रक्षा की थी। हरियाणा निवासियों को नादिरशाह और अहमदशाह अब्दाली के नृशंसतापूर्ण अत्याचारों को भी सहना पड़ा था। बाद में इसके कुछ भाग पर मराठों और सिक्खों का भी शासन रहा। 1800 से 1850 ई. तक धीरे-धीरे करके यह प्रदेश अंग्रेजों के अधिकार में चला गया। लेकिन, स्वतंत्रता की लौ यहां के निवासियों के हृदय में निरंतर प्रज्ज्वलित रही और देश के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में उन्होंने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। 1857 ई. में हिसार, हांसी, रोहतक, बल्लभगढ़, झज्जर, रेवाड़ी, अम्बाला आदि अनेक स्थानों पर अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह हुआ। उसके पश्चात् गांधीजी के नेतृत्व में चल रहे स्वतंत्रता आंदोलन में भी हरियाणा निवासियों ने बढ़-चढ़कर भाग लिया।

दोनों महायुद्धों और उसके पश्चात् चीनी और पाकिस्तानी आक्रमणों के समय हरियाणा के वीरों ने अपनी अद्भुत वीरता का परिचय देकर यह सिद्ध कर दिया कि हरियाणा के वीरों में शौर्य का प्रचंड प्रकाश है और वे युद्ध-प्रहार अपनी छाती पर सहते हैं। इनकी पीठ पर कोई घाव नहीं कर सकता। भारत-पाक युद्ध में पाकिस्तानियों के दांत खट्टे करने वाले हरियाणा

के वीर सैनिकों के पराक्रम और शौर्य की कहानी भारत के इतिहास में स्वर्ण-अक्षरों में लिखी जायेगी।

वैदिक संस्कृति का हरियाण को केंद्र स्थल माना जाता है। भारतीय संस्कृति का आदि स्रोत 'ऋग्वेद' है, जिसमें अनेक स्थानों पर सरस्वती नदी का उल्लेख है और एक मंत्र में दृषद्वती तथा आपयाः नदियों का नाम आता है। हरियाणा के दो सरोवरों शर्यणावत् तथा मानुष का भी वर्णन है। जिससे सिद्ध होता है कि इसकी अधिकांश ऋचाएं यहीं प्रकट हुईं। तैत्तिरीय आदि अनेक संहिताओं, ऐतरेय, तैत्तिरीय, शतपथ, पंचविश, जैमिनीय आदि ब्राह्मण ग्रंथों; तैत्तिरीय एवं शंखायन आदि अरण्यकों; छांदोग्य, बृहदारण्यक, जाबाल, कौषीतकी आदि उपनिषदों; कई प्रमुख श्रोतों, सूत्रों, श्रीमद्भगवद्गीता से अलंकृत महाभारत; मनुस्मृति; भागवत, वायु, ब्रह्माण्ड और मार्कण्डेय आदि अनेक पुराणों का प्रणयन भी इसी क्षेत्र में हुआ है, जो यह प्रमाणित करते हैं कि हरियाणा वैदिक संस्कृति के उदय एवं विकास का केंद्र रहा है। कालांतर में 'नैमिषारण्य' इस संस्कृति के मुख्य ज्ञान-तीर्थ के रूप में स्थापित हुआ और उसकी स्थिति भी हरियाणा में सरस्वती और दृषद्वती के दोआब में ही स्वीकार की जाती है। इसी 'नैमिषारण्य' में व्यास का आश्रम था। 'महाभारत' और पुराणों की रचना का संबंध भी इसी 'नैमिषारण्य' से जोड़ा जाता है।

हरियाणा में वैदिक संस्कृति के प्रवर्त्तक अनेक ऋषियों-मुनियों के आश्रम थे, जिनमें महर्षि वशिष्ठ एवं महर्षि विश्वामित्र, च्यवन, भृगु, आप्लवान, जमदग्नि, उद्दालक, दुर्वासा एवं कपिल मुख्य हैं, जो अपने त्याग एवं तपस्या, मनन एवं चिंतन तथा ज्ञानसाधना से वैदिक संस्कृति के उन्नयन एवं प्रसार में संलग्न थे और जिन्होंने 'मानव-धर्म' का प्रवर्त्तन एवं विकास किया। मानवीय-चेतना सीमित एवं संकुचित पार्थिव परिवेश के स्तर से ऊपर उठकर किस प्रकार विराट चेतना का साक्षात्कार कर सकती है इसका अप्रतिम दिग्दर्शन इस सांस्कृतिक परिवेश में होता है।

'कुरुक्षेत्र' हरियाणा की इस प्राचीन सांस्कृतिक संपदा एवं पवित्रता का प्रतीक है। भारत के पवित्रम तीर्थों में इसका बहुत ऊंचा स्थान है। कुरुक्षेत्र एक स्थान मात्र नहीं है। वरन् अपने भौगोलिक स्वरूप में हरियाणा प्रदेश का पर्यायवाची है। यह क्षेत्र भरतों, पुरुओं और कुरुओं का केंद्र था। अनेक प्राचीन संस्कृत ग्रंथों में कुरुओं का उल्लेख मिलता है। उन्हीं के नाम पर

इस प्रदेश का नाम 'कुरुक्षेत्र' पड़ा था। प्राचीन काल में भारतीय संस्कृति के अभ्युदय और विकास में 'धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र' का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। वैदिक काल में यज्ञों के अनुष्ठान एवं ऋचाओं के गान से यहां का वायुमंडल पवित्र रहता था। 'वामन पुराण' के अनुसार राजा कुरु ने यहां तप, संयम, सत्य, दया, पवित्रता, दान, योग आदि 8 प्रकार के बीज बोये थे, जो इस क्षेत्र की आध्यात्मिक धरोहर हैं। 'महाभारत' में भी कुरुक्षेत्र को सर्वोत्तम तीर्थ कहा गया है। उसके अनुसार "पृथ्वी का तीर्थ नैमिष है, अंतरिक्ष का तीर्थ पुष्कर है, किंतु कुरुक्षेत्र तीनों लोकों का तीर्थ है। इसके दर्शन मात्र से सभी पाप दूर हो जाते हैं।" कहते हैं कुरुक्षेत्र के स्थाणवीश्वर महादेव के मंदिर में पांडवों ने महाभारत युद्ध में विजय की कामना से शिव का पूजन किया था। आज भी सूर्यग्रहण के अवसर पर विभिन्न धर्मों, मतों, संप्रदायों, वर्णों, वर्गों, प्रदेशों के लाखों लोग अपने पापों का नाश करने और पुण्य लाभ करने के लिए कुरुक्षेत्र और विशेष रूप से स्थाणवीश्वर या 'थानेसर' में आते हैं और अपनी सांस्कृतिक एवं भावात्मक एकता का परिचय देते हैं। कुरुक्षेत्र मात्र एक तीर्थ नहीं है, वरन् सैकड़ों तीर्थों का समुच्चय है, जिनमें अदितिवन, पारिप्लव, सौमतीर्थ, कपलियक्ष, श्रीतीर्थ, कपिलातीर्थ, सूर्यतीर्थ, ब्रह्मावर्त, कामेश्वर मातृ तीर्थ, कपिष्ठ, पुण्डरीक, व्यासवन, ब्रह्मसरोवर, सप्तसारस्वत, विश्वामित्र तीर्थ, पृथूदक, रेणुकातीर्थ, कुरुतीर्थ, अनरक, ज्योतिसर, नैमिष कुंच, स्थाणु और सन्निहित आदि प्रमुख हैं।

इन तीर्थों के संबंध में पुराणों तथा अन्य ग्रंथों में जो विवरण उपलब्ध हैं, उनसे यह संकेत मिलता है कि ब्रह्मा, विष्णु, महेश, कार्तिकेय, इंद्र, सूर्य, अग्नि आदि का कुरुक्षेत्र से कुछ-न-कुछ संबंध अवश्य रहा है।

बौद्ध जातकों में भी कुरुक्षेत्र की महिमा का वर्णन है। सत्य एवं असत्य तथा धर्म एवं अधर्म का निर्णायक युद्ध 'महाभारत' भी इसी 'धर्मक्षेत्र-कुरुक्षेत्र' में हुआ था। यहीं भगवान् कृष्ण ने 'श्रीमद्भगवद्गीता' में आत्मा के सच्चिदानंद स्वरूप; ज्ञान, कर्मयोग एवं भक्ति के समन्वय; सुख-दुःख, हानि-लाभ, अहंकार, काम, क्रोध आदि से मुक्त होकर स्थितप्रज्ञ होने; परमात्मा के प्रति सर्वभावेन समर्पित होकर निष्काम कर्म एवं कर्त्तव्य पालन करते हुए लोककल्याण करने का अमर संदेश मानवता को दिया था।

पिहोवा, कलायत, कपालमोचन, कैथल आदि इस प्रदेश के अन्य

महत्त्वपूर्ण तीर्थस्थान हैं। पिहोवा का पुराना नाम पृथूदक था जो वेन के पुत्र राजा पृथु के नाम पर रखा गया था। कलायत का मूल नाम कपिलायत था। यहां अनेक प्राचीन मंदिर हैं। कैथल भी एक पवित्र स्थान है। इसकी पवित्रता का वर्णन कैथल नरेश भाई उदयसिंह के दरबारी कवि भाई संतोषसिंह ने 'बाल्मीकि रामायण भाषा' में संवत् 1891 में इस प्रकार किया है :–

तीर तीर तीरथ की भीर बड पीर हरि,
नीर भरे सुंदर सुहावते सुपान की।
संत है महंत भगवंत की भगतिवंति,
अंतक के अंत की न पाइ परिप्रान की।
परम पवित्र है वचित्र देवतानि थान,
जत्र तत्र चित्र चित्र देति मति स्थान की।
उपमा महान की न आन में समान की,
पुराण में प्रमान की सुकैथल सथान की।।

हरियाणा प्रदेश में विभिन्न स्थानों से प्राप्त हुई प्रस्तर मूर्तियों से भी इस प्रदेश की प्राचीन संस्कृति एवं धर्म के स्वरूप पर प्रकाश पड़ता है। इन मूर्तियों एवं मंदिरों के प्रस्तर खण्डों से आभास मिलता है कि हरियाणा में चौथी-पांचवीं शताब्दी में शिव की उपासना की जाती थी जो अब तक प्रचलित है। शिव के पुत्र कार्तिकेय का एकमात्र मंदिर इसी प्रदेश–पेहवा में है। वहीं पशुपति महादेव का एक प्राचीन चतुर्मुखी भव्य मंदिर स्थित है। आज भी हरियाणा के गांव-गांव में शिवालय मिलेंगे और शिवरात्रि के पर्व पर शिव-भक्तों का उत्साह एवं निष्ठा देखने योग्य होती है। घंटियों की मधुर ताल पर "बबं बबं बम बम भोले"; "बम-बम भोलेनाथ सदाशिव, तीनों लोक बांट दिए पल भर में", गाते हुए शिवभक्त 'जंगम' हरियाणा के कस्बों और गांवों में अभी भी देखे जा सकते हैं। बहुत से विद्वानों का मत है कि हर (शिव) का उपासना क्षेत्र होने का कारण ही इस प्रदेश का नाम 'हरयाना' पड़ा है।

जैन धर्म व बौद्ध धर्म के अवशेष भी हरियाणा में मिले हैं। ऐसा समझा जाता है कि भगवान् बुद्ध भी हरियाणा प्रदेश में पधारे थे। चीनी यात्री ह्वेन सांग ने कुरुक्षेत्र के हर्षकालीन बौद्ध विहारों का उल्लेख अपने यात्रा-विवरणों में किया है। अभी हाल में ही ब्रह्मसरोवर के निकट एक प्राचीन बौद्ध-स्तूप मिला है। कौल मत, हीनयान एवं महायानी सिद्धों का भी यहां पर्याप्त प्रभाव

था। 'मस्तनाथ चरित्र' में लिखा है:—

घूना बारह पंथ का रहा बहुत गंभीर,
एक सहस्र योगी तपै नदी सरस्वती तीर।।

धार्मिक दृष्टि से हरियाणा का मध्यकालीन सांस्कृतिक परिदृश्य भी ऐतिहासिक महत्त्व का है। हरियाणा में 8वीं शताब्दी से लेकर 16वीं शताब्दी तक की शैव मत तथा भागवत धर्म आदि से संबंधित अनेक मूर्तियों एवं मंदिरों के अवशेष मिले हैं। पिंजौर में हरिहर, शिव, अग्नि, उमा-महेश्वर एवं विद्याधर की, जींद में विष्णु की, पेहवा में गणेश तथा ब्रह्मा की, बेरी में ब्रह्मा-विष्णु सहित विद्याधर, सूर्य, हरिहर एवं उमा-महेश्वर की, रोहतक में यक्षिणी की, झज्जर में मत्स्य, कच्छप, गंधर्व, वराह, नृसिंह, परशुराम, वामन, बुद्ध, कल्कि एवं सभी अवतारों एवं विष्णु की, कोसली में विष्णु की तथा अस्थल-बोहर की पार्श्वनाथ की जो मूर्तियां मिली हैं, उनसे स्पष्ट है कि भागवत तथा अन्य धार्मिक संप्रदायों का यहां काफी प्रभाव था। उनके समन्वय की प्रवृत्ति भी लक्षित होती है। सिद्धों, नाथों, संतों, सूफियों का भी हरियाणा प्रचार-केंद्र रहा है। रोहतक के निकट अस्थलबोहर का मठ नाथों का प्रमुख साधना-केंद्र रहा है। कनपटे योगी तथा खप्पर धारण करके, काले वस्त्र पहनकर, लाल जिह्वा करके घूमने वाली भैरवियां आज भी यहां देखी जा सकती हैं। कुरुक्षेत्र के भैरव के प्राचीन सिद्ध पीठ की भी बहुत मान्यता है। शेख फरीद, शेख चहली, बू-अलीशाह कलंदर, जलालुद्दीन जैसे प्रसिद्ध सूफी फकीरों ने भी यहां के सांस्कृतिक जीवन को कम प्रभावित नहीं किया। हांसी, हिसार, पानीपत, करनाल, कुरुक्षेत्र, सढ़ौरा आदि स्थान सूफियों के मुख्य साधना केंद्र हैं। इनकी प्रेममयी साधना का भक्ति-भावना से विशेष अंतर नहीं था, इसीलिए यहां के लोगों पर उनकी गरीबी, संन्यास एवं पवित्र जीवन का गहरा प्रभाव पड़ा। यही कारण है कि आज भी बहुत से हिंदू इन फकीरों की मजारों पर दीये जलाते हैं और चादर चढ़ाते हैं। हिंदी के सूफी प्रेमाख्यानों के नायक यदि योगी बनकर अपनी प्रेमिका—परमात्मा की खोज में घर से निकलते हैं, तो बहुत से हिंदू-योगियों को आज भी सारंगी पर हीर-रांझे के प्रेमगीत गाते देखा जा सकता है जो सूफियों की प्रेममयी साधना के प्रभाव के सूचक हैं। इस प्रकार जहां एक ओर नाथ-मत ने सूफीमत को प्रभावित किया, वहीं नाथ-मन ने भी सूफीमत का पर्याप्त प्रभाव ग्रहण किया है। कई सिक्ख गुरुओं

ने भी इस भूमि को अपनी चरण रज से पवित्र किया है।

मध्ययुग में विदेशी आक्रमणकारियों ने इस प्रदेश की प्राचीन संस्कृति को नष्ट करने के भी भरसक प्रयास किए। स्थान-स्थान से प्राप्त खण्डित मूर्तियों तथा मंदिरों के भग्नावशेषों से इस बात की पुष्टि हो जाती है। किंतु, अपनी आंतरिक शक्ति और जीवंतता के कारण हमारी सांस्कृतिक परंपरा आज भी जीवित है, प्रवाहमान है और लाखों-करोड़ों लोग अपनी पुरातन आस्थाओं का सहारा लेकर धार्मिकता का जीवन जी रहे हैं। सनातन धर्म सभा और आर्य समाज का प्रभाव आज भी यहां पर्याप्त मात्रा में देखा जा सकता है।

इतनी प्राचीन, समृद्ध एवं गौरवपूर्ण सांस्कृतिक संपदा को अपने अंचल में समेटे भारत का यह पवित्र प्रदेश साहित्य-सृजन के क्षेत्र में भी अपने कीर्तिमान स्थापित किए हुए है। ऋग्वेद, यजुर्वेद, अनेक संहिताओं, ब्राह्मण ग्रंथों, अरण्यकों, उपनिषदों, स्मृतियों आदि के अतिरिक्त 'श्रीमद्भगवद्गीता' से सुशोभित 'महाभारत' ग्रंथ की रचना भी इसी क्षेत्र में हुई थी। 'महाभारत' को 'इतिहास-पुराण' की संज्ञा से अभिहित किया जाता है, जिसके संबंध में यह भी कहा गया था कि "जो अन्यत्र है वह 'महाभारत' में है और जो 'महाभारत' में नहीं है वह अन्यत्र भी नहीं है।" 7-8वीं शताब्दी में यहां संस्कृत की उत्कृष्ट काव्यकृतियों का सृजन हुआ। कुरुक्षेत्र के प्रतापी सम्राट् हर्ष स्वयं एक श्रेष्ठ कवि एवं नाटककार थे। उन्होंने 'रत्नावली', 'प्रियदर्शिका', 'नागानंद' आदि नाटकों की रचना की थी। उनके राजकवि बाणभट्ट द्वारा रचित 'कादंबरी' एवं 'हर्षचरित' जैसी कालजयी कृतियां संस्कृत-साहित्य का अलंकार हैं। मयूर का 'मयूर शतक' तथा 'सूर्य शतक' भी महत्त्वपूर्ण काव्यकृतियां हैं। मातंग भी इसी युग के एक श्रेष्ठ कवि हैं। महाराजा हर्ष के काल में स्थानेश्वर एक प्रसिद्ध विद्यापीठ थी, जहां देश-देशांतर से जिज्ञासु आते थे। इस क्षेत्र में ज्ञान-पिपासु विद्वानों की ज्ञान-गोष्ठियां निरंतर चलती रहती थीं। उसी गौरव-गाथा को समुन्नत और विकसित करने के लिए यहां कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय की स्थापना की गई है। हर्ष के पश्चात् लगभग एक हज़ार वर्ष तक की कोई विशिष्ट साहित्यिक कृति उपलब्ध नहीं है। सम्भवतः इस अवधि की राजनीतिक अस्थिरता, संघर्षों एवं अराजकता के कारण या तो संस्कृत में यहां विशेष साहित्य लिखा नहीं गया या फिर जो लिखा गया,

वह उपलब्ध नहीं है। आधुनिक काल में पुनः संस्कृत के पठन-पाठन एवं लेखन की ओर ध्यान गया है और अनेक सुधी लेखकों ने संस्कृत साहित्य के सृजन में अपनी प्रतिभा का प्रकाशन किया है।

संस्कृत साहित्य के साथ-साथ हरियाणा में अपभ्रंश तथा हिंदी में भी प्रचुर साहित्य लिखा गया है। इस दृष्टि से नाथ एवं जैन साहित्य का विशेष महत्त्व है। अस्थल बोहर मत्स्येंद्र नाथ के शिष्य चौरंगीनाथ की तपोभूमि रही है। उनके अनेक पद नाथों में प्रचलित हैं। इन्हीं की परंपरा में मस्तनाथ अच्छे कवि हुए हैं। 'महापुराण', 'जसहर चरिउ' आदि ग्रंथों के लेखक जैन कवि पुष्प अथवा पुष्पदंत का जन्म हरियाणा में ही हुआ था। उनकी काव्य-भाषा अपभ्रंश है, यद्यपि कुछ विद्वान् इन्हें पुरानी हिंदी का प्रथम कवि भी मानते हैं। इसी प्रकार श्रीधर को भी कुछ लोग हिंदी का प्रथम कवि मानते हैं, जिसका समय विक्रमी संवत् 1150 के आस-पास पड़ता है। इनके दो चरितकाव्य 'पासणाह चरिउ' तथा 'बड्ढमाण चरिउ' उपलब्ध हैं। श्रीधर भी हरियाणा के वासी थे। 15वीं शती से 18वीं शती तक बूचराज (हिसार), हेम विजय सूरी, भट्टारक रत्न कीर्ति (हांसी), मालदेव (सिरसा), आनंदघन अथवा लाभानंद, रूपचंद (सेलमपुर), भगवतीदास, माई चंद जैन, लूनराव (नारनौल) आदि अनेक जैन कवियों का साहित्य उपलब्ध है जो निरंतर प्रवाहमान भारतीय साहित्य-सरस्वती का अभिन्न अंग है। प्रसिद्ध सूफी कवि फरीद पंजाबी के प्रथम कवि माने जाते हैं। वे कुछ समय हांसी-हिसार में रहे थे। संभवतः, उसी काल में उन्होंने हिंदी में कुछ पदों की रचना की थी जो 'गुरु ग्रंथ साहिब' में संकलित हैं। उन्हीं पदों के आधार पर मेरी मान्यता है कि फरीद को हिंदी का प्रथम प्रामाणिक कवि स्वीकार किया जा सकता है।

मध्ययुग में यहां संत साहित्य भी प्रचुर मात्रा में लिखा गया। हरियाणा के संत कवियों में गरीबदास, नितानंद, निश्चलदास, जीतराम, जैतराम, रामरूप, वीरभान, भाई संतोख सिंह आदि कवियों के नाम उल्लेखनीय हैं। ये अधिकतर रीतिकाल के कवि हैं, किंतु रीतिकालीन शृंगारिक परंपराओं से मुक्त रहकर इन कवियों ने अध्यात्मनिष्ठ नैतिक मूल्यों की स्थापना करके नवीन सामाजिक चेतना जागृत करने का प्रयास किया और हिंदी साहित्य को अपनी सरस एवं सरल वाणी से संपन्न किया।

आधुनिक युग में बहुत से लेखक हिंदी साहित्य की विविध विधाओं को

अपनी कृतियों से समृद्ध कर रहे हैं। कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, निबंध, आलोचना सभी क्षेत्रों में हरियाणा के साहित्यकारों ने ख्याति अर्जित की है। भारतेन्दु एवं द्विवेदी काल में यहां बहुत-सा साहित्य लिखा गया। अनेक पत्र-पत्रिकाओं का भी प्रचलन हुआ। हरियाणा की प्रथम पत्रिका 'जैन प्रकाश' है, जिसका प्रकाशन सन् 1884 में हुआ था। इसके पश्चात् सैकड़ों पत्र-पत्रिकाएं प्रकाशित हुईं और हो रही हैं, जिनका हिंदी-पत्रकारिता के साथ-साथ खड़ी बोली, पद्य एवं गद्य के विकास में भी महत्त्वपूर्ण योगदान है। आर्यसमाज और सुधारवादी सनातन धर्म के प्रभावशाली आंदोलनों से प्रेरणा पाकर इन पत्रिकाओं के माध्यम से नवीन सांस्कृतिक-सामाजिक चेतना से युक्त प्रचुर साहित्य प्रकाश में आया। हरियाणा के समसामयिक लेखकों की रचनाओं में औद्योगीकरण एवं महानगरीय बोध से उत्पन्न आज के मनुष्य की अभिशप्त नियति, अमानवीयता, मूल्यहीनता, शंका, संदेह, संत्रास, ऊब, अकेलापन, घुटन, धक्का-पेली करके साथ के लोगों को पटककर आगे बढ़ने की स्वार्थवृत्ति आदि का चित्रण भले ही न हुआ हो, किंतु जीवन की सच्चाइयों और सहज अनुभूतियों का, वैयक्तिक तथा सामाजिक जीवन की विविध समस्याओं का यथार्थ एवं स्वाभाविक चित्रण इन साहित्यकारों ने विशदता एवं मार्मिकता से किया है। किंतु, यह खेद का विषय है कि हिंदी के साहित्येतिहासों में हरियाणा के प्राचीन एवं आधुनिक साहित्य के योगदान की उपेक्षा ही होती रही है। ऐसे अनेक लेखक हरियाणा में हैं जो अपने लेखन के आधार पर सारे देश में जाने-पहचाने जाते हैं, सम्मानित एवं समादृत हैं।

उत्तर भारत में मुसलमानों का आगमन काफी पहले से आरंभ हो गया था। दिल्ली पर उनके आधिपत्य के पश्चात् यहां फारसी का प्रभुत्व होने लगा था। हरियाणा में भी फारसी और उर्दू का काफी साहित्य लिखा गया। अनवर रोहतकी, अब्दुल वासय हांसीवी, बू अली कलंदर पानीपती, शेख गुलाम कादिर जालानी तथा शेख महबूब आलम झज्जरी जैसे हरियाणा के फारसी कवियों का उल्लेख किया जा सकता है।

उर्दू का जो साहित्य हरियाणा में लिखा गया, उसकी अनेक उपलब्धियां हैं। इस साहित्य से ऐसे तथ्य भी प्रकाश में आए हैं, जिनके आधार पर यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि उर्दू भाषा और साहित्य के जन्म का श्रेय हरियाणा को ही है। हरियाणा में उर्दू पद्य और गद्य साहित्य की कई सौ वर्षों

की गौरवपूर्ण परंपरा है। जहांगीर के समकालीन मुहम्मद अफजल पानीपती हरियाणा के प्रथम उर्दू लेखक हैं, जिनके 'बारहमासा' में कालिदास के 'ऋतुसंहार' की झलक मिलती है। औरंगज़ेब के शासनकाल में मुहब्बे आलम (झज्जर), अब्दुल वहीद (हांसी), हज़रत शाह गुलाम जिजलानी, मौलवी मुहम्मद मज़ान (रोहतक), फरुखसियर के समकालीन मीर ज़फर जटली (नारनौल) जैसे प्रतिष्ठित एवं ख्यातिप्राप्त साहित्यकार हरियाणा ने उर्दू को दिए हैं। इनके अतिरिक्त और भी बहुत से कवि हुए हैं, जिन्होंने अपनी कृतियों से उर्दू साहित्य को गौरवान्वित किया है।

इस साहित्य के अध्ययन से एक महत्त्वपूर्ण बात यह भी सामने आती है कि यदि इसे फारसी लिपि के स्थान पर नागरी लिपि में लिखा-पढ़ा जाए तो इसमें से अधिकांश हिंदी खड़ी बोली का साहित्य है। मुगल सम्राट् फरुखसियर के समकालीन कवि मीर ज़फर जटली की कविता के कुछ उदाहरण इस संदर्भ में द्रष्टव्य हैं–

हर समय ढूंढ़े चाकरी, कोई न पूछे बात री।
सब कौम ढोवे लाकड़ी, यह नौकरी का हज़ है।
तरसें हमेशा गेहूं कूं। समझाए राखे ज्यों यूं कूं।
जैसा पिपाही पियूं कूं। यह नौकरी का हज है।

निर्विवाद रूप से इसे टकसाली खड़ी बोली की कविता कहा जा सकता है। जटली ने अपनी कविता में आर्थिक अभावों व भारतीयों की दुर्दशा का वास्तविक एवं यथार्थ चित्रण करते हुए समकालीन राजनीतिक एवं सामाजिक विसंगतियों आदि पर तीखे व्यंग्य किए हैं। उनकी कविता खड़ी बोली के एक ऐसे सहज, सरल एवं व्यावहारिक तरज़ेब्यान एवं अंदाज़ को प्रकट करती है, जिसका हिंदी साहित्य में उस युग में सर्वथा अभाव था। वस्तुतः, हरियाणा की उर्दू कविता खड़ी बोली पद्य के इतिहास के पुनर्लेखन की ओर दिशा-निर्देश करती है। पंजाब में गुरुमुखी लिपि में उपलब्ध खड़ी बोली गद्य की 400 वर्ष पुरानी परंपरा रही है, जो हमारी इस धारणा को पुष्ट करती है कि खड़ी बोली का जन्म पंजाब और हरियाणा में 400-500 वर्ष पहले हुआ था और वहां खड़ी बोली गद्य-पद्य में प्रचुर साहित्य लिखा गया। गद्य साहित्य की लिपि प्रायः गुरुमुखी थी और पद्य फारसी लिपि में लिखा गया है। निःसंदेह; खड़ी बोली के इतिहास में हरियाणा के इस योगदान को नज़रअंदाज़ नहीं किया

जा सकता।

इन समृद्ध सांस्कृतिक एवं साहित्यिक परंपराओं के अतिरिक्त हरियाणा की लोक-संस्कृति और लोक-साहित्य की भी एक अलग रंगत है, अलग महक है।

हरियाणा का लोक-जीवन अत्यंत सरल, सादा एवं सहज है। पुरुष परिश्रमी और सरल स्वभाव के हैं और स्त्रियां उनके परिश्रम में सहयोग देती हैं। हल चलाने को छोड़ कर सभी कार्यों में वे उनका हाथ बंटाती हैं। वे अबला नहीं सबला हैं। पुरुष की सहधर्मिणियां हैं। हरियाणा अंग्रेजों की राजधानी दिल्ली का निकटवर्ती प्रदेश है, फिर भी जैसे अंग्रेज़ी सभ्यता और संस्कृति उनके लोक जीवन को छू नहीं सकी। हरियाणा के लोक जीवन में आज भी भारत की जीवंत सांस्कृतिक परंपरायें अनेक पर्वों, उत्सवों, व्रतों, अनुष्ठानों, संस्कारों आदि के रूप में प्रवाहमान हैं। होली, दीपावली, विजयदशमी, रक्षा-बंधन, तीज, भाई-दूज, करवाचौथ, होई, रामनवमी, नागपंचमी, संकष्ट चतुर्थी, दूबडी, दुर्गाष्टमी, कृष्ण जन्माष्टमी, गोवर्धन, गोपाष्टमी, संक्रांति, एकादशी, पानीराखणी, मकर संक्रांति, नवरात्रे आदि ऐसे अनेक उत्सव, त्यौहार एवं व्रत हैं, जो यहां के लोकजीवन को गतिमान रखते रहे हैं। इन अवसरों पर जो अनुष्ठान होते हैं, अथवा जो लोक-गीत गाए जाते हैं, या लोक कथाऐं सुनाई जाती हैं, उनमें हरियाणवी लोक-जीवन की, सामाजिक-व्यवस्था, नैतिक आदर्श एवं सांस्कृतिक परंपराओं की झलक मिलती है।

लोकसंस्कृति एक अंचल विशेष की संपूर्ण एवं समग्र जीवन-पद्धति का प्रतीक है। जीवन से जुड़े सभी पक्षों, मान्यताओं, धारणाओं, लोक-विश्वासों का उसमें प्रतिबिंब होता है।

औद्योगीकरण एवं महानगरीय जीवन के शोर-शराबे से दूर वनों-उपवनों में, पर्वतों की उपत्यकाओं में, नदियों-नालों के कछारों में, बागों-बगीचों में, खेतों और खलिहानों में, होली और तीज के त्यौहारों में, गणगौर और झांसी के अनुष्ठानों में, विदाई और छठी के संस्कारों में, लगन और मेंहदी की रस्मों में, मड़ियों और मजारों के पूजन में, चरखे एवं चक्की तथा रहट और कोल्हू के इर्द-गिर्द लोक संस्कृति जन्मती और विकसित होती है और उसकी प्रतिध्वनि सुनाई पड़ती है लोक साहित्य अथवा लोकवार्त्ता में।

आदिकाल से मनुष्य अपनी तीव्र भावानुभूति एवं सौंदर्य-चेतना को विविध कला-माध्यमों से अभिव्यक्ति देता रहा है। मानव-सभ्यता और संस्कृति के विकास के साथ-साथ मानवीय चेतना का जितना परिष्कार हुआ, मानवीय वृत्तियों का जितना विकास हुआ, साहित्य एवं अन्य कलाओं में उतनी ही उदात्तता एवं परिष्कृति आती गई। जीवन की सादगी और सहजता से नागरिक-संकुलता की ओर जितना संक्रमण होता गया, कला-बोध उतना ही जटिल, सूक्ष्म एवं अलंकृत होता गया। लोक साहित्य से शिष्ट साहित्य की ओर प्रस्थान-यात्रा का यही रहस्य है। वस्तुतः, लोक साहित्य में जन सामान्य के जीवन की सच्चाइयों, आस्थाओं, अनुभवों, विश्वासों आदि की जितनी निश्छल, प्रखर, उन्मुक्त एवं स्वच्छंद अभिव्यक्ति होती है, उतनी शिष्ट साहित्य में नहीं। हमारे लोक साहित्य में भारत के विभिन्न प्रदेशों की सांस्कृतिक विरासत, अनेकता में एकता तथा देश की अपनी पहचान के दर्शन होते हैं। शिष्ट साहित्य में प्रायः अभिजात्य वर्ग एवं सामन्तीय जीवन की भावनाओं एवं हितों को ध्यान में रखा जाता है, जबकि लोक साहित्य में आम लोगों की चिंता, उनकी सोच व समस्याओं की अभिव्यक्ति होती है। उसमें नदियों का उद्दाम वेग, निर्झरों की चंचलता, मधुमास की मादकता, चांदनी की स्निग्धता, आम्र मंजरी की महक, कोयल की कूक, पपीहे की पुकार, मिट्टी की सोंधी खुशबू एवं गुलाब की सुगंध समाई होती है। उसमें धमाल और लूर की लय, मंजरी और डफ की ताल सुनाई पड़ती है। उसमें मनोवेगों का सहज उच्छ्वास, आत्मीयता, सहृदयता, संवेदनशीलता, मार्मिकता, स्पष्टता एवं विश्वसनीयता होती है।

हरियाणा की लोकसंस्कृति तथा लोकवार्त्ता में ये सभी तत्त्व, सभी गुण, सभी विशिष्टताएं विद्यमान हैं। हरियाणवी लोकगीतों, लोककथाओं, लोकगाथाओं, लोकनाट्यों, लोकोक्तियों, मुहावरों आदि में हरियाणवी लोकसंस्कृति अपनी संपूर्णता से ध्वनित है। हरियाणा के लोक साहित्य की यह गौरवपूर्ण परंपरा हमारी सांस्कृतिक विरासत की मूल्यवान निधि है।

हरियाणा प्रदेश धन-धान्य से भरपूर है। हिसार, सिरसा, रोहतक का किसान अपने कठोर परिश्रम से रेत से भी सोना उगाता है। हरियाणा गाय, बैलों और भैंसों के लिए सारे देश में प्रसिद्ध है। यहां घी और दूध की नदियां बहती हैं और किसान 'इन्द्र को भी दुर्लभ तक्र' का प्रयोग पानी की तरह

करता है—(तक्रं शक्रस्य दुर्लभम्)। इस प्रदेश की इसी समृद्धि के कारण 'महाभारत' में कहा गया था :—

ततो बहुधनं रम्यं, गवाढ्यं धनधान्यवत्।
कार्तिकेयस्य दयितं रोतकमुपाद्रवत्।।

(सभापर्व—अध्याय 32)

हरियाणा की सांस्कृतिक संपन्नता, लोकतांत्रिक परंपरा, शौर्य एवं पराक्रम, धन-धान्य की समृद्धि तथा ज्ञान-गरिमा के कारण ही इसे पृथ्वी का स्वर्ग कहा जाता था। दिल्ली से पांच मील की दूरी पर स्थित सारबाल नाम के गांव में सुलतान मुहम्मद बिन तुगलक के समय का विक्रम संवत् 1384 का एक शिलालेख मिला है, जिसमें हरियाणा के संबंध में इस प्रकार लिखा है :—

देशोस्ति हरियाणाख्यः पृथिव्यां स्वर्गसन्निभः।।

(1996)

मिटी धुंध जग चानन होइआ

गुरु नानकदेव एक विलक्षण व्यक्तित्व के धनी, एक महान संत, निष्ठावान साधक, क्रांतिदर्शी समाज-सुधारक, प्रगतिशील धर्म-प्रवर्त्तक तथा मानवतावादी चिंतक थे। आज भी उनका संदेश उतना ही संगत और सार्थक है जितना तब था। उनके व्यक्तित्व और विचारधारा के संबंध में बहुत कुछ लिखा जा चुका है, बहुत कुछ कहा जा चुका है, इसलिए कुछ भी ऐसा नया नहीं है, जो मैं कहना या लिखना चाहता हूं। इतना अवश्य है कि उनके व्यक्तित्व और कृतित्व पर हम अपनी-अपनी आस्थाओं, अपने-अपने परिवेश और चिंतन के संदर्भ में पुनः-पुनः विचार करते हैं और उनसे नई-नई प्रेरणा और शक्ति, आस्था और विश्वास प्राप्त करते हैं। आज जिस द्वंद्व और तनाव की स्थिति से हम गुज़र रहे हैं, उसके निराकरण के लिए उनके चरित्र की महत्ता हमारे लिए और भी अधिक उपयोगी हो गई है।

प्रत्येक महापुरुष का मूल्यांकन उसके युग के संदर्भ में करना ही अधिक समीचीन होता है। आज यद्यपि युग बदल गया है, परिस्थितियां और परिवेश बदल गया है, आस्थाएं और विश्वास बदल गए हैं, दृष्टि और दिशा बदल गई है, फिर भी आज के प्रसंग में भी उनकी प्रेरणा अतिप्रासंगिक है—शायद और भी ज़्यादा। आज जिस अनास्था और अविश्वास, भौतिकता और स्वार्थ, चरित्रहीनता और चरित्रहनन, असामाजिकता और असमानता, मिथ्यात्व और अहंकार, भ्रष्टाचार और बेईमानी, मूल्यहीनता और छोटेपन के दौर से हम गुज़र रहे हैं, गुरुनानक का जीवन और संदेश हमें नया आलोक प्रदान करके हमारा समुचित मार्गदर्शन कर सकता है।

इतिहास के अनुसार गुरुनानक का जन्म अप्रैल के महीने में हुआ था। किंतु, सिक्ख-परंपरा में उनका जन्म शरद् पूर्णिमा को माना जाता है। गुरुनानक के जीवन पर आधारित अधिकांश जन्म-साखियों और महाकाव्यों में

शरद्-पूर्णिमा ही उनकी जन्म-तिथि स्वीकार की गई है। संभवतः, यह कल्पना उनके चारित्रिक गुणों को ध्यान में रखकर की गई है, क्योंकि उनकी अक्षय कीर्ति का वर्णन भाई संतोखसिंह ने 'गुरु नानक प्रकाश' में इस प्रकार किया है :

श्री गुरु नानक कीरति रानी की सेज सुहाई आकास नहीं।
छाई नीलांबर सो नहिं स्यामता पास पिटारी न चंद तेही।
ता मध पाई म्रिगमद दीसत है न कलंक निसंक लही।
है कलका मलका की बिखेरी उड्गन पाति न जानी सही।

यह जो सुंदर, निर्मल आकाश दिखाई पड़ रहा है, यह आकाश नहीं है वरन् उनकी कीर्ति रानी की सुहावनी सेज है। वहां जो श्यामता दिखाई पड़ती है वह वास्तव में सेज पर बिछा नीलांबर है और चंद्रमा उसके निकट रखी शृंगार की पिटारी है। चंद्रमा में जो कलंक दिखाई पड़ रहा है वह वास्तव में उस पिटारी में रखी हुई सुगंधित कस्तूरी है और चारों ओर बिखरे हुए जो तारागण हैं, वे उस सेज पर बिखरी हुई मल्लिका की कलियां हैं।

भाई गुरुदास ने गुरु नानक के यश का वर्णन करते हुए कहा है—

"सतगुरु नानक प्रगटिआ मिटी धुंध जग चानन होइआ—"

धुंध का समय भी प्रभात का होता है, जिसके निराकरण का कार्य प्रभात के बालसूर्य को करना होता है। उसकी किरणें भी चंद्रमा-सी कोमल और उज्ज्वल होती हैं, यद्यपि उनमें उष्मा और प्रकाश होता है, लेकिन प्रचंडता और प्रखरता तो उसमें भी नहीं होती।

मध्यकाल में यवनों के आक्रमण, धार्मिक कट्टरता और अत्याचारों से भारतीय जनता अत्यधिक त्रस्त एवं पीड़ित थी। गोस्वामी तुलसीदास के समकालीन एक संत कवि अनंतदास ने इस स्थिति का यथार्थ वर्णन इस प्रकार किया है—

असुर राज चहुं दिसि अंधियारा, आतंकि भरे लोगनि हैहैकारा।
दिवालै खंडी मसीत उसारहिं, निगमागम फांटि समुद तिराहीं।
चढ़ि-चढ़ि मारहि गांव नरेसू, तिनके डरि उजड़ भयो देसू।
ऐसा दंद भयो चहु देसा।...

गुरु नानक मध्ययुग के पहले और संभवतः अकेले धर्म-प्रवर्त्तक थे, जिन्होंने उस युग के राजनीतिक आतंक, अत्याचार, हिंसा और दमन के प्रति

अपना असंतोष व्यक्त किया था। बाबर द्वारा ऐमनाबाद पर आक्रमण के अवसर पर जो हिंसा और अत्याचार हुए उसके प्रति अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए गुरु नानक ने कहा था कि, "यदि शक्तिशाली शक्तिशाली से संघर्ष करता है तो बात कुछ समझ में आती है, लेकिन अगर शक्तिशाली निरीह और असहाय व्यक्तियों का वध करे तो यह कोई न्याय नहीं है।" लोगों के दुख-दर्द से पीड़ित होकर वे ईश्वर को भी उलाहना देते हैं कि 'इतनी मार पड़ने पर भी उस प्रभु के मन में करुणा क्यों नहीं उमड़ी?' इस युग के निर्दयी और नृशंस शासकों की तुलना सिंह, कुत्तों और कसाइयों से करते हुए वे उन शासकों के क्रूर कृत्यों की ओर संकेत करके उनके प्रति अपनी घृणा ही व्यक्त करते दिखाई पड़ते हैं।

सामान्यतः उस युग की जनता शासकों के इन अत्याचारों के प्रति अपने को सर्वथा असहाय समझती थी और इसीलिए उदासीन भी थी कि कोई भी राजा हो उन्हें क्या अंतर पड़ता है, क्योंकि उन्हें तो अंततः गुलाम ही रहना है। गोस्वामी तुलसीदास ने मंथरा के माध्यम से उस युग की पराजित, निःसहाय, दीनहीन जनता की इस मनोवृत्ति को इस रूप में प्रकट किया था—

"कोउ नृप होउ हमहि का हानी।...
चेरी छाडि होउ कि रानी।"

महाकवि भाई संतोख सिंह के अनुसार गुरु नानक को जब मुसलमान बनाने के लिए सुलतानपुर की मस्जिद में ले जाया गया, उस समय वहां की जनता केवल इतना ही कह सकती थी—

"हिंदू कोई न कहि सके, तुरकन तेज बिसाल।
परमेसर ही पत राखई सिमरहु दीन दयाल।।"

('गुरु नानक प्रकाश')

उस युग की हिंदू जनता में शासकों के अत्याचारों के विरोध में कुछ भी कहने अथवा कर पाने की शक्ति अथवा सामर्थ्य नहीं था। गुरु नानक उनकी इस मनःस्थिति और युग की उस व्यवस्था से अपरिचित नहीं थे और इसीलिए उन्होंने नई राजनैतिक चेतना जगाने का भरसक प्रयास किया। वे एक युग प्रवर्त्तक लोकनायक थे और राजनीतिक व्यवस्था के प्रति भी उसी प्रकार जागरूक थे, जैसे कि इस युग की धार्मिक और सामाजिक विसंगतियों के प्रति। उन्होंने अन्यायी और अत्याचारी शासकों का विरोध ही नहीं किया,

वरन् यह भी स्पष्ट किया कि अच्छा सुलतान अथवा राजा कैसा होना चाहिए।

ब्रह्म की परिकल्पना में उन्होंने उसे 'निरभउ' और 'निरवैर' भी कहा है; और मनुष्य को भी वह उसी ब्रह्म का रूप मानते हैं। इससे यह संकेत मिलता है कि जब वह परब्रह्म 'निर्भय' और 'निरवैर' है, तो मनुष्य को भी उसी प्रकार 'निर्भय' और 'निरवैर' होना चाहिए। यह एक ऐसी विलक्षण अवधारणा है जिसके माध्यम से गुरु नानक युग की राजनीतिक-चेतना को एक नई दिशा देते प्रतीत होते हैं। इसी चेतना को आगे बढ़ाते हुए गुरु तेगबहादुर ने कहा था—

"भय काहू कउ देति नहिं, नहिं भै मानत आनि।
कहु नानक सुनि रे मना, गिआनि ताहि बखानि।।"

निश्चय ही, यवन शासकों के अत्याचार और अन्याय के विरुद्ध राजनीतिक-चेतना जगाने का जो महत्त्वपूर्ण कार्य गुरु नानक ने किया था, वह उनकी राष्ट्रीयता और मानवतावादी प्रवृत्ति का परिचायक है।

सामाजिक क्षेत्र में भी गुरु नानक सभी वर्गों की एकता, समानता और सामाजिक-न्याय के समर्थक थे। उस युग के सामाजिक जीवन में वर्ण और वर्ग भेद की इतनी विषमता थी कि सामाजिक समानता और एकता की कल्पना करना भी कठिन था।

गुरु नानक उन व्यक्तियों में से हैं जिन्होंने सामाजिक अन्याय, असमानता और शोषण के विरुद्ध असंतोष प्रकट करते हुए इसका विरोध किया और यह घोषणा की—"जो नीचों से भी अधिक नीच है नानक तो उनके साथ है। बड़े वर्ग के लोगों से उनका क्या वास्ता"—

"नीचां अंदर नीच जाति नीचहू अति नीच।
नानक तिनके संग साथ, वड़ियां सिंउ क्या रीस।।"

गुरु नानक की धारणा थी कि सामाजिक-विषमता के होते हुए सामाजिक-एकता की कल्पना संभव नहीं है। इसीलिए उन्हें संसार के सभी लोग अपने दिखाई पड़ते थे, कोई भी 'बाहरी-जीव' प्रतीत नहीं होता था।

सामाजिक क्षेत्र में सामाजिक-विषमता वर्ण-व्यवस्था तक ही सीमित नहीं थी, वरन् आर्थिक स्तर पर भी शोषण की प्रक्रिया विद्यमान थी, जिससे दो वर्गों के बीच की खाई बढ़ती जा रही थी। एक ओर वह शोषक और संभ्रांत वर्ग था जो जीवन की सभी सुविधाओं और संपदाओं का उपभोग कर रहा

था; दूसरी ओर वह दीन-हीन कृषक और मज़दूर वर्ग था जो दूसरे वर्ग के शोषण का शिकार था। गुरु नानक ने शोषण की इस पद्धति के विरुद्ध आवाज़ उठाई और भाई भागो और लालो के प्रसंग से यह सिद्ध किया कि वह उच्च वर्ग के उन व्यक्तियों से कोई संबंध नहीं रखना चाहते जो दूसरे का शोषण करते हों। अमीर वर्ग की दी हुई रोटियों को जब वह निचोड़ते हैं तो उनमें से खून टपकता है और जब गरीब आदमी की श्रम अर्जित सूखी रोटियों को निचोड़ते हैं तो उनमें से दूध निकलता है। इसी को दृष्टांत रूप में लेकर वह कहते हैं कि "यदि एक वस्त्र को खून का छोटा-सा धब्बा भी लग जाता है तो वह अपवित्र हो जाता है। उस मनुष्य की क्या गति होगी जो हमेशा दूसरों का खून चूसते हैं।"

इस नृशंसतापूर्ण शोषण के प्रति घृणा उत्पन्न करते हुए वह पुनः कहते हैं कि दूसरों के हक को छीनना हिंदुओं के लिए गाय के मांस खाने के बराबर हैं और मुसलमानों के लिए सूअर का मांस खाने के बराबर है। कहना न होगा कि आर्थिक स्तर पर इस प्रकार का प्रगतिशील-चिंतन आधुनिक-बोध का संकेत देता है। आज से पांच सौ वर्ष पूर्व गुरु नानकदेव ने शोषण के विरुद्ध मज़बूती से और निर्भयता से अपनी आवाज़ उठाई थी।

गुरु नानक के समय देश की धार्मिक अवस्था बड़ी शोचनीय थी। अनेक प्रकार की पाखंडपूर्ण साधनाएं तथा आडंबरयुक्त कर्म-कांड प्रचलित थे, जिससे धर्म का वास्तविक रूप लुप्त हो गया था। इसीलिए गुरु नानक ने कहा था कि "धर्म पंख लगाकर उड़ गया है, झूठ की अमावस चारों ओर छाई हुई है, जिससे सत्य का चंद्रमा कहीं दिखाई नहीं पड़ता।" उस युग में प्रचलित विभिन्न धर्मों, संप्रदायों, मतों आदि की साधना-पद्धतियों के मिथ्यात्व और निरर्थकता पर आक्षेप करते हुए गुरु नानक ने उन्हें सत्य मार्ग दिखाने की चेष्टा की है। धार्मिक ग्रंथ पढ़कर, संध्या करके, मूर्तियों की पूजा करके, समाधि लगाकर, गले में माला डालकर और मस्तिष्क पर तिलक लगाकर अपने को पंडित कहने वालों को समझाते हुए उन्होंने कहा था कि यह सब फोकट कर्म है। गुरु नानक के अनुसार ब्रह्म को जानने वाला ही आदर्श ब्राह्मण है। वह स्वयं भी भवसागर से पार उतरता है और औरों को भी पार उतारता है।

हरिद्वार में गंगाजल से पितरों को अर्घ्य देने वाले व्यक्तियों की निंदा करते हुए उन्होंने कहा था कि यदि यहां से तुम्हारे पितरों को जल पहुंच

सकता है तो मेरी खेती को क्यों नहीं। उन्होंने इस बात का भी खंडन किया कि ईश्वर केवल पूर्व की ओर मुख करके प्रार्थना करने से मिलता है, या पश्चिम की ओर बैठकर नमाज़ पढ़ने से। मक्का के काज़ियों और मुल्लाओं को वह यह दिखा देते हैं कि काबा उधर ही घूमता जाता है, जिधर वह पांव करते हैं। जिससे उन्हें यह संदेश मिलता है कि खुदा केवल पश्चिम में ही नहीं है। वह तो सब दिशाओं में है। वह सब जगह, घट-घट में निवास करता है। वह उन्हें बताते हैं कि मेहर ही 'मस्जिद' है, सिदक ही 'मुस्लिम' है, शील ही 'रोज़ा' है। अच्छा कर्म ही 'काबा' है, सत्य 'पीर' है और भला करना ही 'कर्म' है। इन सबको ग्रहण करके ही एक 'अच्छा मुसलमान' बना जा सकता है।

इस युग में नाथ योगी शरीर में भस्म लगाकर, कानों को कटवाकर, किंथा धारण कर, हाथ में डंडा लेकर अलख जगाते हुए लागों को चमत्कृत कर रहे थे। नानक ने इन्हें बताया कि योग बाह्य चिह्नों को धारण करने में नहीं है वरन् जो समान दृष्टि से सबको देखता है, आदर्श योगी वही है।

संतोष की 'मुंदा', शरम-पत की 'झोली', ध्यान की 'विभूति', पवित्र शरीर की 'किंथा' और योग-युक्ति का 'डंडा' धारण करके और मन को जीतने से ही जग को जीता जा सकता है।

उन्होंने साधुओं के एक आश्रम में देखा था कि कोई समाधि लगाकर बैठा हुआ है, कोई एक टांग पर खड़ा है और कोई वृक्षों पर लटका हुआ है, कोई जल में खड़ा है तो कोई पञ्चाग्नि सेवन कर रहा है। नानक ने इन सब प्रकार की साधना-पद्धतियों के स्थान पर 'संत-सेवा' और 'नाम-स्मरण' करने को ही सच्ची साधना माना है। वे सत्य, संतोष, संयम, दया, क्षमा आदि के धागों से बने हुए जनेउ को धारण करने में ही उसकी सार्थकता मानते हैं।

सामाजिक एवं धार्मिक जीवन में जो भी विसंगतियां अथवा विद्रूपताएं थीं, उनका परिष्कार करने का उन्होंने भरसक प्रयास किया। लेकिन पाखंडी धर्म-साधकों के प्रति उनमें असंतोष तो है, आक्रोश नहीं; विरोध है, विद्रोह नहीं; निषेध है, कटुता नहीं। वे प्रभात के सूर्य अथवा शीतल चंद्रमा की कोमल किरणों से अंधकार को हटाते प्रतीत होते हैं; दोपहरी के प्रचंड सूर्य की प्रखरता से नहीं।

'अहंकार' को त्यागने पर उन्होंने विशेष बल दिया है। उनके अनुसार किसी को अपनी शक्ति का अहंकार है, किसी को अपने धन का अहंकार है, तो किसी को अपने कुल का। किसी को अपनी सुंदरता का अहंकार है, तो किसी को अपने ज्ञान अथवा यश का। गुरु नानक ने इन सभी प्रकार के 'हऊमैं' को त्यागने का आग्रह किया है और उसको त्यागने का सबसे बड़ा साधन है—सत्संगति, सेवा और नाम-स्मरण। गुरु नानक ने सभी को समझाया कि 'सच्चा धर्म' क्या है। वे किसी भी धर्म अथवा संप्रदाय के विरोधी नहीं थे। वे तो हर व्यक्ति को उसके 'सही धर्म' का स्वरूप बताना चाहते थे। यदि कोई हिंदू है तो 'अच्छा हिन्दू' कैसे बना जा सकता है। कोई मुसलमान है तो 'अच्छा मुसलमान' कैसे बन सकता है। सूफी एक 'अच्छा सूफी' कैसे हो सकता है और योगी एक 'अच्छा योगी' कैसे बन सकता है। गुरु नानक ने धर्म का मानवीय मनोवृत्तियों और आचरण से संबंध स्थापित किया और धर्म को जीवन के व्यापक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया। मानवीय मनोवृत्तियों का परिष्कार उनका मुख्य लक्ष्य था। अपनी मानसिक कुवृत्तियों के कारण ही मनुष्य अधर्मी, पापी, क्रूर, अत्याचारी और अन्यायी बनता है। इसलिए इन कुवृत्तियों की निंदा करते हुए नानक कहते हैं कि "लोभ कुत्ते के समान है, असत्य 'चूहड़े' के समान है, ठगि करना मुर्दा खाने के समान है, परनिंदा दूसरों का मल खाने के समान है, और क्रोध चांडाल के समान है।" गुरु नानक मनुष्य के भीतर की आत्मा को जगाकर उसके निजी सत्य का उद्‌घाटन करना चाहते थे। उसे अपनेपन का सही साक्षात्कार करवाकर धर्म के आदर्श मार्ग पर चलाना चाहते थे। उनके लिए धर्म का अर्थ है 'आत्म-बोध' और 'आत्म-परिज्ञान'। अनासक्ति, संतोष, सत्य, करुणा, दया, सेवा, त्याग और सदाचार उनके लिए धर्म के अभिन्न अंग थे, क्योंकि इन्हीं को धारण करने से नर से नारायण बना जा सकता है। उनका कहना था कि मानव का लक्ष्य मानव-सेवा, मानव-प्रेम और मानव-कल्याण होना चाहिए और यह शुद्ध वैयक्तिक आचरण तथा सामाजिक और व्यावहारिक जीवन में परिष्कार से ही संभव हो सकता है।

गुरु नानक धर्म के व्यापक पक्ष के संस्थापक थे। वे 'मानव-धर्म' के पोषक थे। उनके लिए जीवन के 'उच्च नैतिक मूल्य' ही धर्म हैं। उन्होंने मात्र धार्मिक-साधना के रूप में धर्म को नहीं देखा; वरन् सारे सामाजिक

संदर्भ में धर्म का प्रसार किया। आदर्शों को व्यावहारिक जीवन में ग्रहण करना और खंडन की अपेक्षा सही मूल्य की पहचान पर ध्यान देना ही 'धर्म' का वास्तविक आदर्श है। धर्म को जीवन के हर क्षेत्र, हर पहलू और हर आचरण में उन्होंने देखा।

आज युग बदल गया है, लेकिन समस्याएं आज भी वही हैं, जो पहले थीं। केवल उनका रूप बदल गया है। मनोवृत्ति नहीं बदली। समस्याएं और भी उग्र हो गई हैं। स्वार्थ, हिंसा, लोभ, ईर्ष्या एवं अहंकार और अधिक बढ़ गए हैं तथा उनके स्वरूप में भी विविधता आ गई है। अतः, गुरु नानक के आदर्श आज पहले से भी अधिक सार्थक और उपयोगी हैं। अपने कल्याण के लिए, सामाजिक कल्याण के लिए और मानव के कल्याण के लिए।

(1994)

जहां तहां तुम धरम विथारौ

कभी-कभी ही ऐसा लोकनायक इस भूतल पर अवतरित होता है जो अपनी अमृतवाणी एवं मंगलकारी कृत्यों से इतिहास को नया मोड़ देता है और संतप्त मानवता को अपने जीवंत संदेश से सींचकर ज़िंदगी के दरिया में एक नई हिलोर उत्पन्न कर देता है। दसवें गुरु गोविंदसिंह जी ऐसे ही युग-पुरुष थे। उनका व्यक्तित्व विविध रूपात्मक था। वे एक निष्ठावान् एवं समन्वयवादी धर्म-प्रवर्त्तक, सशक्त समाज-सुधारक, युग-स्रष्टा कवि, आस्थावान् चिंतक, आशावादी राष्ट्रनायक तथा साहसी योद्धा थे। वे सत्य, न्याय, सदाचार, निर्भीकता, समानता, दृढ़ता, त्याग एवं साहस की प्रतिमूर्ति थे। पूर्ववर्ती गुरुओं की भांति वे भी निरंतर विभिन्न मत-मतांतरों एवं संप्रदायों के आडंबर-युक्त बाह्याचारों, पाखंडपूर्ण कर्मकांडों, अहंकारयुक्त साधनाओं, अंधविश्वासों एवं रूढ़ियों का विरोध और सिक्ख मतानुकूल आध्यात्मिक विचारों का प्रतिपादन करते रहे तथा अहंकार-त्याग, संत-सेवा एवं नाम स्मरण का उपदेश देते रहे। इस प्रकार परम सत्य की उपलब्धि को लक्ष्य मानकर मानव-मात्र का मंगल चाहने वाले वे परमसंत थे, तथापि उनका जीवन, व्यक्तित्व एवं काव्य आद्यंत वीर-भावना से ओतप्रोत है। उनका व्यक्तित्व वज्र-सा कठोर, तड़ित-सा तेजस्वी, सिंह-सा सशक्त एवं पर्वत-शिला-सा दृढ़ था। वे अदम्य साहस, अजेय शक्ति एवं अडिग धैर्य से युक्त गत्यात्मक एवं शक्तिशाली व्यक्तित्व के धनी थे। वे धर्मान्ध यवन अत्याचारियों के अनाचार एवं आतंक से पीड़ित निरीह, असहाय एवं निर्बल हिंदू जनता के रक्षक थे। उनकी प्रसिद्ध काव्य-कृति 'दशमग्रंथ' विभिन्न अस्त्र-शस्त्रों के प्रहार-प्रतिप्रहार, वीरों के शौर्य-प्रदर्शन, उनके साहसपूर्ण कृत्यों, उत्साहपूर्ण उक्तियों एवं वीरोचित अनुभवों की चित्रशाला है। अपनी प्रसिद्ध आत्म-कथा 'विचित्रनाटक' में वे लिखते हैं—

हम इह काज जगत मो आए धरम हेतु गुरुदेव पठाए।
जहां तहां तुम धरम बिथारौ, दुष्ट दोखयनि पकरि पछारौ।

उनका कथन है कि वे तो हेमकूट पर्वत पर तपस्या कर रहे थे, तभी अकाल पुरुष ने उन्हें भूतल पर आकर दुष्टों का विनाश करके धर्म को स्थापित करने का आदेश दिया। इस ब्रह्माज्ञा का पालन करने के लिए ही उन्हें खड्ग धारण करना पड़ा।

उनके लिए सत्य, न्याय एवं धर्म के संस्थापक तीर, तुफंग, गदा, गुरज आदि सभी अस्त्र-शस्त्र ब्रह्म के प्रतीक हैं।

तुमी गुरज तुमही गदा, तुम ही तीर तुफंग।
दास जान मोरी सदा, रच्छ करो सरबंग।

गुरु गोबिंदसिंह मूल रूप में धर्म-गुरु थे, तथापि युग-परिस्थितियों ने उन्हें शस्त्र धारण करने के लिए बाधित किया। 'गीता' में भगवान् कृष्ण ने अन्याय और अत्याचार का विरोध करने का जो आदर्श प्रस्तुत किया था, गुरु गोबिंदसिंह का आचरण ठीक उसके अनुरूप था। अन्याय और अत्याचार के प्रति विरोधात्मक स्वर आदि नानक की वाणी में भी मुखरित हुआ है। परवर्ती गुरुओं में यह भावना क्रमशः विकसित होती गई और गुरु हरगोबिंद के वीर आचरण में इसकी प्रथम अभिव्यक्ति हुई तथा इसका चरम उत्कर्ष तथा फलागम 'खालसा पंथ' की स्थापना में हुआ। अकबर की धर्म-सहिष्णु एवं उदार नीति का स्थान औरंगज़ेब की धर्मान्ध, असहिष्णु एवं संकुचित नीति ने ले लिया था। इस धार्मिक अन्याय एवं आतंक के प्रति विरोध प्रकट करते हुए नवें गुरु तेगबहादुर ने शांतिपूर्वक अपना बलिदान दिया था। विवश होकर उनके पुत्र श्री गुरु गोबिंदसिंह को स्वधर्म की रक्षार्थ खड्ग का सहारा लेना पड़ा। अपनी इस नीति को 'ज़फरनामे' में स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा था कि—

चू कार अज़ हमह हीलते दरगुज़श्त,
हलाल अस्त बुरदन व शमशेर दस्त।

"जब सत्य और न्याय की रक्षार्थ अन्य सभी साधन विफल हो जाएं तो तलवार को धारण करना सर्वथा उचित है।" अधर्म एवं अनीति के विनाशार्थ उन्होंने स्वयं ही साहस और शौर्य का प्रदर्शन नहीं किया, वरन् अपनी वीर-गाथाओं द्वारा भारत की सुप्त वीर-शक्ति को जगाने का भी अद्भुत कार्य

किया। अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध विद्रोह और क्रांति का बिगुल बजाकर उनमें स्वाभिमान एवं आत्म-सम्मान का भाव जाग्रत किया।

यवनों के अत्याचारों के विरुद्ध उन्होंने विद्रोह की पताका बुलंद की और पवित्र आचरण-युक्त खड्गधारी 'खालसा पंथ' के रूप में भारतीय वीर-शक्ति का संगठन करना आरंभ किया। युद्ध-भूमि में निरंतर शत्रु-दल से जूझते हुए उनका संहार करते रहने का अकाल पुरुष से वर मांगते हुए वे 'चंडी-चरित्र' में लिखते हैं–

देहि सिवा वर मोहि इहै सुभ करमन ते कबहूं न टरौं।
न डरौं अरि सौं जब जाई लरौं निसचे कर आपनी जीत करौं।
अरु सिख हों आपने ही मन को इह लालच हउ गुन तउ उचरौं।
जब आव की अउध निदान बने अत ही रन में तब जूझ मरौं।

यहां गुरु गोबिंदसिंह के व्यक्तित्व के कुछ विशिष्ट तत्त्व उभर कर सामने आते हैं। 'शुभ-करमन ते कबहूं न टरौं' में उनके वीर-चरित्र की उदात्तता प्रकट होती है। 'न डरौं' में उनकी निर्भीकता, 'निसचे कर अपनी जीत करौं' में अपनी विजय में विश्वास, 'सिख हों आपने ही मन को' तथा 'गुन तऊ उचरौं' में प्रभु-भक्ति एवं गुरुमत में आस्था तथा 'रन में तब जूझ मरौं' में उनके रणोत्साह आदि की व्यंजना होती है। यह एक ऐसा पद है जिसमें उनकी वीरता और शौर्य-कर्म के आदर्श, लक्ष्य और सार्थकता आदि की सही अभिव्यक्ति हो रही है। युद्धरत होते हुए भी शुभ-कर्मों के प्रति दृढ़ता से प्रतिबद्ध रहना उनके चरित्र की एक विलक्षणता है, जो उन्हें सही अर्थों में एक 'धर्मवीर' बनाती है।

पहाड़ी राजाओं, मुगलों अथवा पठानों की संयुक्त विशाल सेना के सामने साधारण कृषकों की उनकी सेना बहुत नगण्य थी, फिर भी वे साहस और निर्भीकता से उनसे निरंतर लोहा लेते रहे। 'कृष्णावतार' में योद्धाओं की वीरता के आदर्श को प्रस्तुत करते हुए उन्होंने लिखा है।

कहा भयो मम ओर ते, सूर हने संग्राम।
लरबो मरबो जीतबो इह सुभटनि को काम।

'कृष्णावतार' की इस उक्ति का 'गीता' में दिए गए भगवान कृष्ण के इस आह्वान–'हतो वा प्राप्सयसि स्वर्गं', जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्। तस्मात् उत्तिष्ठ कौंतेय युद्धाय कृतनिश्चयः'–से अद्भुत साम्य है।

कठिन-से-कठिन परिस्थिति में भी वे कभी हतोत्साहित नहीं होते थे। चाहे आनंदपुर के चारों ओर से दीर्घकाल तक घिरे रहने पर अन्न-जल के संकट की भयंकर स्थिति हो या चमकौर युद्ध की विकट अवस्था, वे साहस, धैर्य, दृढ़ता एवं निर्भीकता के साथ एक कर्म-वीर की भांति शत्रु-सेना का मुकाबला करते थे। चाहे उनके कितने ही सैनिक हताहत हो जाएं, या उनका साथ छोड़ कर चले जाएं, वे तनिक भी घबराते नहीं थे। वे अकेले ही शत्रु-दल से जूझने का दृढ़ संकल्प एवं अदम्य साहस रखते थे। 'कृष्णावतार' के एक प्रसंग में इस परिस्थिति को व्यंजित करते हुए उन्होंने लिखा है कि जब जरासंध की विशाल वाहिनी से भयभीत होकर यादव सेना भाग खड़ी होना चाहती है, उस समय कृष्ण का यह ओजस्वी सिंहनाद सुनाई पड़ता है :—"चाहे सभी यादव साथ छोड़ जाएं, कृष्ण बलराम को साथ लेकर अकेले समस्त शत्रु-दल का संहार करने को तत्पर हैं।" गुरु गोबिंदसिंह ऐसे ही दृढ़ संकल्प के यशस्वी एवं साहसी शूरवीर थे। इसी कर्मठता एवं पराक्रम से उन्होंने अनेक सशक्त शत्रुओं का संहार किया। भंगाणी, नादौन, आनंदपुर आदि के अनेक भीषण युद्धों में उन्होंने अपने अद्भुत पराक्रम, शौर्य, साहस, दृढ़ता एवं धैर्य का परिचय दिया था। युद्धभूमि में शत्रु सेना से घिरे वे दृढ़ता और साहस के स्तंभ की भांति अपने स्थान पर डटे रहकर विकट बाण-वर्षा करके शत्रुओं को हताहत करते थे।

बाल्यावस्था से ही वे सैन्य-संगठन एवं शस्त्र-संचालन का अभ्यास करते रहे थे और गज़ब के तीरंदाज़ एवं खड्गधारी थे। उस रण-बांकुरे के रणभूमि में अवतरित होते ही शत्रु-सेना की क्या दशा होती थी, इसका वर्णन भाई संतोख सिंह ने इस प्रकार किया है :

दल जे दिलेश अचलेश दोऊ मिलि धाए,
धुरवा से धौंसा की धुंकार उठै घोरि घोरि।
बांधे बड़े ठट्ट भट्ठ घट्ट के संघट्ट जुट,
लोहे की चमक छटा छवि भांति कोरि कोरि।
गोरे परे ओरे धूम अधिक अंधेर धूर,
हल के हरौल हलाहली उठै ठौरि ठौरि।
तौ लौं ही बनाऊ श्रीगोबिंद सिंह राऊ जो लौं,
छोरे न समीर तीर जेहि माहिं जोरिं जोरि।

दिल्लीपति एवं पहाड़ी राजाओं की सेना के प्रचंड योद्धा बड़े-बड़े ठट्ट बांध कर अपनी तीक्ष्ण तलवारों को चमकाते हुए तथा ओलों की भांति गोले बरसाते हुए चले आते थे, परंतु उनका यह बनाव तभी तक है जब तक रण-बांकुरे गुरु गोबिंदसिंह युद्ध-भूमि में अवतरित नहीं होते थे। उनके सम्मुख आते ही वे ऐसे भाग खड़े होते हैं जैसे पवन के सम्मुख घन-घटा। उनके नगारों के घोष से दिग्-दिगंतर कांप उठता था और शत्रुओं का हृदय दहल उठता था :

कल नहिं परत विकल देस बंगस को,
पलक न लागै पल रूम साम सामनी।
गोलकुंड कंपति नगारन की धुनि सुनि,
बीजापुर बदर बसत बन जामनी।
आसमान दहल, दहल गिर्यो लंक हीर,
दरी मैं दबत फिरैं दसन जिऊं दामनी।
तेरे डर गोबिंद म्रिगिंद गुरु अरिनि की,
टोला टोल जाई सो खटोला मांगे भामिनी।

उनके शौर्य से शत्रुदल इतना आतंकित रहता था कि उनकी धाक सुनकर उनके कलेजे दहल उठते थे। उनके तेज के त्रास से वे पारे की भांति अस्थिर होकर तड़पने लगते थे और पुराने पत्तों की भांति इधर-उधर भटकने लगते थे।

गुरु गोबिंदसिंह की तीखी तलवार ऋतुराज के समान विख्यात थी, तथा उनकी प्रचंड कृपाण जो शत्रुओं की तुरंगों की फौज को काटने वाली, मतंगों के मान का मर्दन करने वाली, धरा को विदीर्ण करने वाली तथा अरियों को अधीर कर देने वाली थी, द्वीप-देशों में प्रसिद्ध थी। यही कारण है कि उनकी सेना के प्रस्थान से लोक-अलोक का दिल दहल जाता था। 'सूर्य-मंडल' लरज उठता था, कैलाशपति शिव भयभीत हो जाते थे और शेष-सुरेश भी डर से थर-थर कांपने लगते थे।" उनके प्रसिद्ध दरबारी कवि सेनापति ने अपनी प्रसिद्ध प्रबंध-रचना 'गुरु शोभा' में उनके सेना-प्रस्थान के आतंक का चित्रण करते हुए लिखा है।

डंकन घोर सु घोर भई, सुनि कै पुरियां सब ही लरजीं।
लरजै सब भान भिआन भए किह कारन काज चढ्यो हरिजी।

लोक अलोक सभे लरजै, सिबजी कैलासपति भै डरजी।
सुन सेस महेस सुरेस बड़े लरजे सिंह गोबिंद के डर जी।

गुरु गोबिंदसिंह जहां स्वयं एक यशस्वी योद्धा थे, वहीं वे एक कुशल सेना-नायक भी थे। अपने साहसपूर्ण कृत्यों एवं ओजस्वी उक्तियों से वे मुर्दों में भी जान डाल देते थे, कायरों को भी अद्वितीय वीर बना देते थे। बचित्तरसिंह द्वारा युद्ध-भुमि में नेजे से मस्त हाथी को मार भगाने की घटना उनके व्यक्तित्व के इस पक्ष को मुखरित करती है कि वीरों में रणोल्लास एवं युद्धोत्साह उत्पन्न करने की उनमें कितनी अद्भुत क्षमता थी। जब वे अपने हाथों वीरों की रण-सज्जा करते हैं, निजी अमोघ अस्त्र उनके हाथ में दे देते हैं और अपने आशीर्वाद का अजेय बल देकर रण-भूमि में प्रेषित करते हैं, फिर भला विजय-मुकुट उनके सिर पर क्यों न बंधता। ऐसे सुयोग्य एवं वीर नायक के लिए कोई भी सैनिक अपने प्राण हंस-हंस कर न्यौछावर कर सकता है।

निःसंदेह, गुरु गोबिंदसिंह एक साहसी शूरवीर थे और अनेक भीषण युद्धों में उन्होंने अपने प्रचंड पराक्रम का प्रदर्शन किया था। परंतु, हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि तैमूर, गौरी, गज़नबी अथवा अब्दाली आदि की भांति निरीह जनता पर अत्याचार करके धन-संग्रह या राज्य सत्ता स्थापित करना उनका लक्ष्य नहीं था, न ही उनका शौर्य-प्रदर्शन किसी जाति, देश अथवा धर्म को आतंकित करने के लिए था, वरन् उन्होंने अपनी शक्ति का प्रयोग सदा अन्याय-अत्याचार एवं अधर्म के विनाश तथा सत्य, न्याय एवं धर्म की स्थापना के लिए ही किया। उनका किसी भी धर्म, जाति या देश से कोई विरोध नहीं था; विरोध था अन्याय, अत्याचार और अधर्म से। और इनके विरुद्ध वे आजीवन लड़ते रहे। दीन-दुखियों के उद्धार, संतों की रक्षा एवं धर्म की स्थापना के लिए ही उनको योद्धा-रूप धारण करना पड़ा था और इस प्रकार वे सही अर्थों में एक 'धर्म-योद्धा' थे। "सूरा सोई जानिये जो लड़े दीन की हेत" इस अर्थ में वे शूरवीरों के शिरोमणि थे। परंतु, 'दीन' उनके लिए किसी संप्रदाय, मत अथवा पंथ का अभिव्यंजक नहीं था। उनके लिए 'दीन' अथवा 'धर्म' सत्य और न्याय का प्रतीक था। इस तरह उनका वीर-भाव औदार्य एवं उदात्तता से युक्त था। उनकी वीरता में दया, क्षमा एवं विनम्रता थी। उनकी वीरता का आदर्श था—"हाथ में खड्ग और हृदय में हरि-नाम।"

"धन्य जीउ तिह को जग माहिं, मुख ते हरिनाम चित्त में जुद्ध विचारै।"

सेवा, त्याग, सदाचार एवं नाम-स्मरण आदि के द्वारा परम सत्य की उपलब्धि को जीवन का चरम लक्ष्य मानने वाले सिक्खों में उन्होंने उदात्त वीर-भावना का संचार किया और स्वयं अन्याय तथा अत्याचारों के विरुद्ध आजीवन संघर्ष करते रहे। फिर भी उनकी आध्यात्मिक चेतना मूलतः पूर्व गुरुओं के ही अनुकूल थी। पूर्व गुरुओं की भांति उन्होंने भी धर्म-साधना के क्षेत्र में लोकतंत्रीय मूल्यों को महत्त्व दिया। कठोर परिश्रम एवं निष्ठापूर्वक कर्त्तव्य-पालन द्वारा प्राप्त फल का औचित्यपूर्ण उपभोग ही लोकतंत्रीय पद्धति का मूल-आधार है। सिक्खमत में सभी मनुष्यों को धर्मसाधना का समान अधिकार दिया गया है और इस तथ्य को स्वीकार किया गया है कि प्रत्येक व्यक्ति किसी भी वंशगत अथवा जातिगत वैशिष्ट्य के बिना निःस्वार्थ सेवा, अहंकार-त्याग एवं एकनिष्ठ भक्ति द्वारा परमात्मा को प्राप्त कर सकता है। सिक्खों की गुरु-परंपरा सेवा और बलिदान की अपूर्व कहानी है। उसमें गुरु-पद का वही अधिकारी होता था, जो अपने सद्गुणों के कारण इसके योग्य है। वंश-परंपरा अथवा आयु को कोई महत्त्व नहीं दिया जाता था। गुरु नानकदेव ने श्रीचंद और लक्ष्मीचंद नाम के अपने दोनों पुत्रों को अपना उत्तराधिकारी नहीं बनाया, वरन् सेवा, त्याग एवं आज्ञाकारिता से संबंधित अनेक कठिन परीक्षाओं में उत्तीर्ण होने वाले अपने निष्ठावान शिष्य लहना को गुरुपद पर आसीन किया, जो बाद में उनके अंगरूप होने के कारण अंगद कहलाए। गुरु अंगद ने भी सेवा की प्रतिमूर्ति अमरदास को ही इस पद के योग्य समझा। गुरु अमरदास ने तो रामदास नाम के दीन बालक के सद्गुणों पर रीझ कर उसे गुरुपद पर ही प्रतिष्ठित नहीं किया, वरन् अपनी पुत्री का हाथ भी उसे सौंप दिया, भले ही उनके पुत्रों तक ने इसका विरोध किया। गुरु रामदास के पश्चात् गुरुता यद्यपि उसी वंश में रही, पर उसमें भी योग्यता ही निर्वाचन का आधार रही न कि आयु। स्वयं गुरु रामदास ने अपने बड़े लड़कों को गुरुपद न देकर, सबसे छोटे पुत्र अर्जुनदेव को इस पद के योग्य समझा, जिन्होंने समय आने पर अपनी बलि देकर अपनी योग्यता का प्रचुर प्रमाण दिया। गुरु गोबिंदसिंह ने इस लोकतंत्रीय परंपरा को जीवित ही नहीं रखा, वरन् इसे और अधिक सुदृढ़ एवं सशक्त बनाया। उन्होंने 'पंथ' को गुरुता प्रदान की और 'खालसा' की स्थापना

के पश्चात् यह आदेश जारी किया कि पांच या उनसे अधिक गुरु-सिक्खों का सम्मिलित निर्णय गुरु आदेश समझा जाए। इस संस्था को 'गुरुमता' का नाम दिया गया। धर्म में लोकतंत्रीय आदर्शों की स्थापना का यह अनूठा उदाहरण है। इस संस्था को पूरी प्रतिष्ठा देने के लिए उन्होंने स्वयं उसके आदेशों का पालन करके दिखाया। 'खालसा' की स्थापना के समय पांच-प्यारों को अमृत-छकाने के पश्चात् वे उनसे स्वयं अमृत-पान कर दीक्षा ग्रहण करते हैं। गुरु द्वारा शिष्यों से इस प्रकार दीक्षा ग्रहण करने की यह घटना सभी धर्मों के इतिहास में अकेली और विशिष्ट घटना है। यही नहीं, अपने लोकतंत्रीय विश्वास को भली-भांति प्रतिष्ठित करने के लिए तथा गुरु-सिक्खों की इस सिद्धांत के प्रति निष्ठा परखने के लिए गुरु गोबिंदसिंह ने एक अनूठी युक्ति से काम लिया। यह जानते हुए भी कि समाधि-पूजा गुरुमत विरोधी है उन्होंने संत दादू की समाधि के प्रति सम्मान प्रकट किया। सिक्ख-संगत ने अपनी दृढ़ता का परिचय दिया। उन्होंने गुरुजी को दोषी ठहराया और सिक्खों के प्रिय और अपने सिद्धांतों के प्रति निष्ठावान गुरुजी ने उनके द्वारा निर्धारित दंड को सहर्ष स्वीकार किया। दशमगुरु ने सदैव 'गुरुमता' के निर्णयों एवं आदेशों का पालन किया। इसका एक उदाहरण तब प्रस्तुत होता है, जब चमकौर युद्ध में सिक्खों की भयंकर क्षति हो रही थी। आसन्न विपत्ति को देखकर गुरु-सिक्खों ने यह निर्णय किया कि गुरुजी को कुछ सिक्खों को युद्ध के लिए छोड़कर स्वयं पिछवाड़े से निकलकर सुरक्षित स्थान पर चले जाना चाहिए। गुरु गोबिंदसिंह अपने अनुयायियों को युद्ध की आग में झोंककर खुद बच निकलने को कदापि तैयार नहीं थे। परंतु, जब सिक्खों ने उन्हें उनका आदेश याद दिलाया तो 'गुरुमता' के निर्णय के सम्मुख उनको झुकना पड़ा और वे स्थान छोड़कर चले गए। यह संस्था आने वाले समय में कितनी उपयोगी सिद्ध हुई, सिक्ख इतिहास इसका साक्षी है। एक क्रांतिदर्शी लोकनायक ही ऐसे दूरगामी परिणामों की कल्पना कर सकता हैं। अपनी इस लोकलीला का अंत निकट आया जानकर उन्होंने 'गुरु ग्रंथ साहब' को गुरुता प्रदान की और इस प्रकार गुरुपद प्राप्ति के लिए संभावित संघर्षों एवं गुरु-व्यक्ति में आ जाने वाले संभावित दुर्गुणों की आशंकाओं से पंथ को मुक्त कर उसकी उन्नति की संभावनाओं को सुरक्षित करके अपनी दूरदर्शिता एवं नेतृत्व योग्यता का परिचय दिया।

गुरु गोबिंदसिंह तथा अन्य गुरुओं ने अपनी धर्म-साधना में सामाजिक न्याय को अत्यधिक महत्त्व दिया है। भारतीय समाज की जातिगत विषमता की रूढ़िग्रस्त व्यवस्था के स्थान पर सामाजिक समता एवं मानवीय एकता की भावना को प्रश्रय देने के लिए 'लंगर' प्रथा का सूत्रपात किया। गुरु गोबिंदसिंह ने भी जिस समय 'खालसा' की स्थापना की तो सामाजिक विषमता की खाई को पाटने के लिए एक सम्मिलित भोज का आयोजन किया, जिसमें वर्ण अथवा वर्ग का कोई भेद नहीं रखा गया था। वस्तुतः, गुरु गोबिंदसिंह एक गत्यात्मक समाज की स्थापना करना चाहते थे। धर्म-साधना के क्षेत्र में भी वे वैयक्तिक साधना के साथ-साथ सामूहिक साधना एवं मानवकल्याण पर अधिक बल देते थे। गुरु नानक का कथन है कि सच्चा साधक वही है, जो साधना द्वारा अपना मुख तो उज्ज्वल करता ही है, औरों का भी उद्धार करता है। वह स्वयं तो भव-सागर को तरता ही है औरों को भी पार कराता है। गुरु गोबिंदसिंह जब भी अपने इष्टदेव के सामने 'अरदास' करते थे, वे अपने सिक्खों की मंगल-कामना पहले करते थे।

सिक्ख-साधना में 'सेवा' को भी अत्यधिक महत्त्व दिया गया है, जिसका सामाजिक उत्तरदायित्व से गहरा संबंध है। 'वंड खाना' का सिद्धांत शोषण-प्रक्रिया का प्रतिद्वन्द्वी है। गुरु गोबिंदसिंह इन सिद्धांतों के सबल समर्थक थे। वे सामाजिक, राजनैतिक अथवा धार्मिक किसी भी प्रकार के शोषण अथवा अत्याचार के शिकार दीन वर्ग के सबसे बड़े सहायक और संरक्षक थे। अपने इष्टदेव को भी वे 'गरीबुल निवाज़' कहा करते थे, और स्वयं को उनका 'दास' या 'कीट' समान कहकर अपने को भी दीनों की पंगत में खड़ा करते थे क्योंकि उन्हें वे अपना ही अंग समझते थे। इस वर्ग को अत्यधिक प्रतिष्ठा देते हुए वे कहते हैं कि उन्हीं की सहायता से उन्होंने युद्ध में विजय प्राप्त की और उन्हीं के सहारे सब शत्रुओं का विनाश किया।

वस्तुतः, 'दीनों' का ऐसा समर्थ हित-चिंतक, रक्षक, उद्धारक और मददगार उस युग में और कोई दिखाई नहीं देता।

सिंह के समान शत्रु को उसकी मांद में ललकारने वाला, पर्वत से टकरा जाने वाला, वज्र से भी अधिक कठोर, भारतीय संस्कृति का उन्नायक और हिंदू धर्म का रक्षक यह तेजस्वी संत-सिपाही अपने इष्टदेव के सम्मुख कुसुम से भी अधिक कोमल और शिशु से भी अधिक विनम्र दिखाई पड़ता है।

वस्तुतः, वे तेज के पुंज, शक्ति और साहस के समुच्चय, उदारता और सहिष्णुता के कोश और कोमलता एवं विनम्रता के भंडार थे। उनके चित्त में 'नामस्मरण' और हाथों में खड्ग होती थी। सामाजिक समता, मानवीय एकता एवं धार्मिक उदारता में उनका अडिग विश्वास था और अनीति एवं अत्याचार के वे कड़े शत्रु थे। वे सचमुच एक शक्तिशाली एवं गत्यात्मक युग-पुरुष के व्यक्तित्व के धनी थे।

(1994)

अंबवा की डार पै कूके कोयलया

यह आमों का मौसम है। फलों की दुकानें हों या रेहड़ियां, सभी लंगड़ा, दसहरी, मालदा, तोतापरी जैसे तरह-तरह के आमों से भरी दिखाई पड़ती हैं। एक समय था जब आम, आम आदमी का फल समझा जाता था और आम के पत्ते व लकड़ी तक उनके सामाजिक व धार्मिक जीवन के अभिन्न अंग थे। विवाह हो या पुत्रजन्म, घर के दरवाज़ों पर आम के पत्तों के बंदनवार टांगे जाते थे। धार्मिक अनुष्ठानों में मंगल कलश में आम के पत्तों में नारियल प्रतिष्ठित किया जाता है और यज्ञ-हवन में आम की लकड़ी का ही प्रयोग किया जाता है। रसाल हमारे जीवन का रस है। लेकिन, आज आम खरीदना हर आदमी के बस की बात नहीं रही है। जो व्यक्ति दिन-भर मेहनत-मजदूरी करके 25-30 रुपये कमाता है, भला वह 20 रुपये किलो के आम कैसे खरीद सकता है? यानी 4 या 5 रुपये का एक आम। यदि एक दिन की मज़दूरी से कोई भला आदमी एक किलो आम खरीद भी लेता है तो भरे-पूरे परिवार में आम की एक-एक फांक या गुठली ही हिस्से में आ सकती है।

मुझे उन दिनों की याद ताज़ा हो रही है, जब हम मन भरकर आम चूसते थे। नाश्ते में आम, भोजन में आम। सुबह आम, दोपहर को आम, सांय को आम और रात को आम। बस आम ही आम। दाल-भाजी के बिना आम के साथ नमकीन रोटी का मज़ा ही कुछ और होता था। उन दिनों हमारे इलाके में दसहरी या लंगड़े का चलन नहीं था। मालदा या सरौली आम अवश्य होता था, लेकिन बहुत कम। ज़्यादातर देसी चूसने वाले आम ही होते थे। हमारे कस्बे के चारों ओर दूर-दूर तक फैले आमों ही आमों के घने बाग थे। जहां तक नज़र जाती थी, सौ-सौ वर्ष पुराने ऊंचे आमों से लदे-लदे छायादार घने पेड़ों के बाग ही बाग। एक-एक पेड़ ऐसा, जिस पर से 200-300 टोकरे-भर आम उतरते थे। तरह-तरह की गंध वाले आम।

तरह-तरह के रूप और आकार वाले आम, तरह-तरह के रंगों वाले आम, हरे, पीले, सिंदूरी आम। ये आम लाहौर, गूजरांवाला, सरगोदा व रावलपिंडी तक जाते थे। कई बार तो समय पर लदान न मिलने के कारण स्टेशन पर ही हज़ारों टोकरे आम सड़ जाते थे।

जब दो-दो सप्ताह तक लगातार वर्षा होती रहती और सूरज के दर्शन तक न होते तो काली घटाओं की बौछारों में भीगते हम घर से निकल पड़ते और आमों के बागों में घुस जाते। उधर से मूसलाधार वर्षा और इधर से पेड़ों से टप-टप टपकते रस-भरे पक्के आम। हृदय को छू देने वाली कू कहू कहू कूकती कोयल की मधुर मतवाली कूक। तोतों को उड़ाने के लिए वृक्षों पर लटके टीन की आवाज़ें। एक अद्‌भुत सपनीला- सा माहौल होता था वह।

हमारा अपने बाग का रास्ता अन्य कई बागों के बीच से होकर जाता था। हमारे बाग में धनिया, सुनहरी, तोतापरी, सौंफिया, मौलसरिया, केसरिया, मेरी पसंद के कुछ खास आम थे, जो हम जितना चाहें चूस सकते थे। लेकिन, दूसरे बागों में से जाते समय जब रस से लबालब कोई पक्का सिंदूरी आम टप से गिरता, तो रखवाले की आंख बचाकर उसके उठा लेने का मोह संवरण न कर पाते। चोरी के इस आम को चूसने का मज़ा ही कुछ और था।

सांय को हमारी दुकानों के सामने टपके से गिरे इन आमों के भरे टोकरों की लाईनें लग जातीं। एक पैसे के चार, पांच या छः आम। दिन में मूसलाधार वर्षा में गांवों की ढेर सारी मज़दूर औरतें अपने सिर पर पके पीले रसीले आमों की टोकरियां रखे पंक्तियां बांधे भीगती हुई निकलतीं तो एक अजीब-सा समां बंध जाता। कितना मनमोहक दृश्य होता था वह। आठ या दस आने में 15-20 किलो के भरे टोकरे लेकर हम पानी की बाल्टी में डाल लेते और देखते-देखते चूस-चूस कर उन्हें समाप्त कर देते। मीठे-मीठे चूसते और खट्टे फैंकते जाते।

जब आकाश में घनी काली घटाएं छाई होतीं, आमों की गंध से लदी पुरवैया चलती और झीनी-झीनी बूंदें बरस रही होतीं तो स्कूल में 'फाइन डे' घोषित कर दिया जाता। सभी विद्यार्थी टोलियां बना-बना कर नहर पर पहुंच जाते। पहले मन खोल कर नहर में डुबकियां लगाते और ढेरों आम खरीद कर कपड़ों में बांध कर नहर के ठंडे पानी में रख छोड़ते। फिर सब मिलकर

मन भरकर उन्हें चूसते और ऊपर से दूध की लस्सी पीते। लेकिन, वे सब दिन अब अतीत में खो गए हैं। अब उनकी स्मृतियां-मात्र शेष रह गई हैं और घनी अमराइयों के बीच किसी आम की डार पर छिपकर बैठी काली कोयलिया की मधुर कूक आज भी हृदय को कुरेद-कुरेद जाती है।

(1994)

झहरि झहरि झीनी बूंद परती हैं

भारत में प्रकृति का विविध रूपात्मक सौंदर्य अपने संपूर्ण वैभव के साथ विद्यमान है। यहां बसंत, ग्रीष्म, पावस, शीत, हेमंत, शिशिर—इन छः ऋतुओं के माध्यम से प्रकृति-सौंदर्य नित्य नवीन परिधान धारण करता रहता है। वर्षा ऋतु के आते ही जब आकाश में भूरे, श्वेत, श्याम, इंद्रधनुषी बादल कभी मृग-शवक से, कभी भूधर से, कभी हाथियों से, मंडराने लगते हैं और वर्षा की झीनी-झीनी बौछारों से ग्रीष्म से तप्त धरती शीतल और हरी-भरी हो उठती है, तो सभी जीव-जंतु हर्ष-विभोर होकर नाचने-गाने लगते हैं।

वर्षा ऋतु के मनोहर दृश्यों को और उससे उद्दीप्त प्रेमी-प्रेमिकाओं के मिलन व विरह की संवेदनाओं को 'षडऋतु वर्णन' और 'बारह मासा' के अंतर्गत अनेकानेक चित्रों, लोकगीतों व कविताओं में चित्रित किया जाता रहा है। कलाकारों ने काली घटाओं में नृत्य करते मोरों, कामदेव के बाणों से घायल नायिकाओं और झूला-झूलती युवतियों के अनेक मनोरम चित्र अंकित किए हैं। सावन के रसीले गीतों में जवानी की उमंग और उन्माद सुनाई पड़ता है।

आषाढ़ के प्रथम मेघ को देखकर यदि कालिदास का प्रणय-विह्वल यक्ष मेघों को अपना संदेशवाहक बनाकर अपनी प्रेयसी के पास अलकापुरी भेजने को आतुर है तो "घुमड़-उमड़ रही घन घटा" में कड़कती बिजली की ध्वनि से राम कवि की नायिका के प्राण "लरज-लरज" जाते हैं। एक नायिका को ऐसी "अजब लगनि लगि" है कि वह कारी निशि व कारी घटाओं में कारे नागों को कुचलती हुई अपने प्रिय कारे कान्ह को मिलने के लिए जा रही है तो देव कवि की नायिका स्वप्न में कल्पना करती है कि झर-झर झीनी-झीनी बूंदे बरस रही हैं, आकाश में गहरी घटा घिरी हुई है, ऐसे में उसका प्रिय आकर उसे "झूला

झूलिबे" के लिए कहता है, तो वह फूली नहीं समाती, और उमंग में भर कर ज्यों ही उठने लगती है, तो निगोड़ी नींद उठ जाती है और जागने का यत्न करने में उसके भाग्य ही सो जाते हैं, क्योंकि प्रिय के मधुर मिलन का जो आनंद वह ले रही थी, वह दृश्य विलीन हो जाता है और जब आंख खुलती है, तो वह देखती है कि वहां न तो घन है न घनश्याम, बस उसकी आंखों से अश्रुधारा बह रही होती है–

झहरि झहरि झीनी बूंद परती है मानो,
घहरि घहरि घटा घिरी है गगन में।
आनि कह्यो स्याम मों सों चलो झूलिबे को काज,
फूली ना समानी भई ऐसी हों मगन मैं।
चाहत उठ्योई उठि गई सो निगोड़ी नींद,
सोय गए भाग मेरे जागि कै जगन में।
आंखि खोलि देख्यो तो न घन है न घनस्याम,
वेइ छाई बूंदे मेरे आंसु ह्वै दृगन में।।

वर्षा ऋतु से संबंधित ऐसे ढेरों पद कवियों ने लिखे हैं जिनमें प्रेमी-प्रेमिकाओं की भावनाओं का मार्मिक चित्रण हुआ है। पर साथ ही कुछ कवियों ने वर्षा ऋतु के स्वाभाविक एवं सजीव प्राकृतिक चित्र भी बड़ी कुशलता से अंकित किए हैं।

कैथल निवासी महाकवि संतोख सिंह (1788-1843 ई.) ने 60000 छंदों के अपने हिंदी महाकाव्य "गुरु प्रताप सूरज" में वर्षा ऋतु का बहुत ही मनोहारी चित्रण किया है। 'पावस ऋतु के प्रकट होते ही चारों ओर सघन घटा घिर आई, वर्ण-वर्ण के जलधर बरसने लगे; सारी तपन मिट गई; सभी जीव-जंतु हर्षित हो गए; नदियों में नया जल प्रवाहित होने लगा और वह किनारों को तोड़कर बहने लगा; उसमें बहुत से तृण, काष्ठ, बहने लगे; जल जंतु उछल-उछल कर सुख पाने लगे; घोर घटाओं को देखकर मोर शोर करने लगे; पर्वत निर्मल दिखाई पड़ने लगे; और वृक्ष खिले हुए सुंदर सुशोभित होने लगे; सारी पृथ्वी पर हरियाली छा गई और इंद्रवधूटियां दिखाई देने लगीं–

पावस रितु जग महिं प्रगटाई। चहु दिशि सघन घटा घिर आई।
बरण बरण के जलधर बरखहिं। मिटि तपत जंतु जन हरखहिं।

नीर नवीन नदी महिं चलै। कूलनि को ढाहति जनु निगले।
त्रिण कासट संचय बहु बहैं। जल जंतु उछलति सुख लहैं।
घन घोरन ते मोरन शोर। सुनीअति कीरतपुरि चहुं ओर।
बिना धूल ते सैल बिसाले। खरे तरोवर फलति रसाले।
भांति भांति की शोभा होति। सतिगुरु हेरति आनंद उदोत।
हरिआवल होई सभिअवनि। इंदु बधू जुति देखति अवनी।

इसी समय पुरवाई पवन चलने लगी, हाथियों के समूह से बादल मंडराने लगे, घड़ी-भर में घटा घुमड़ पड़ी, बिजली चमकने लगी, बड़ी-बड़ी बूंदें झरी बनकर बरसने लगीं, दल बना-बनाकर बादल आने लगे और बरस कर जाने लगे। चारों ओर पानी ही पानी ऊपर से नीचे की ओर बहने लगा। लोग भाग-भाग कर घरों में घुस गए और वर्षा का आनंद लेने लगे—

तिह छिन चली पौण पुरवाई। निकसे घन जिम गज समुदाई।
घुमड़ी घटा घरीक महिं घनी। घोर घोर घन चपला सनी।।
बड़ी बड़ी बूंदें बहु परी। बरसन लग्यो अधिक भी झरी।
जित कित नीर प्रवाह चलंता। ऊंचे थल ते नम्रि ढरंता।
थाई थाई नर धामन बरे। बारी बहे बिलोकन करें।।

वर्षा ऋतु की इस नैसर्गिक शोभा से जो सुख और आनंद मिलता है, उसके साथ-साथ हमें उससे बहुत कुछ सीखने को भी मिलता है। एक आदर्श सार्थक जीवन जीने का उपदेश मिलता है। अनेक रूपकों, दृष्टांतों, उदाहरणों, उत्प्रेक्षाओं आदि के माध्यम से वर्षा ऋतु के विभिन्न उपकरणों का साम्य दर्शाते हुए कवि कहता है कि—"जलधर आकाश में ऐसे ही रूप धारण करते हैं, जैसे संत परोपकार के लिए शरीर धारण करते हैं। बादल कल्लर व दूसरी भूमि में वैसे ही बरसते हैं जैसे गुरु-वाणी का श्रवण सभी करते हैं। ठौर-ठौर मोरों की ध्वनि ऐसे सुनाई पड़ रही है, जैसे जिज्ञासु भक्त कीर्तन कर रहे हों। अत्यधिक जल से मछलियां ऐसे प्रसन्न हो रही हैं, जैसे भक्तजन गुरु-प्रेम से प्रसन्न होते हैं। जल के तीव्र वेग से तट व तट के वृक्ष ऐसे ढह रहे हैं जैसे ज्ञान से राग-द्वेष और विकार ढह जाते हैं—

बिदते जलधर गगन मझारी। ज्यों तन धरहि संत उपकारी।
कल्लर खेत सकल थल बरखै। देखि देखि करि जन गन हरखैं।
जिम गुरु गिरा सुनहि सभि कोई। प्रेम बीज कहूं उतपति होई।

मधुर-मधुर धुनि सुनि सुनि मोर। ठौर ठौर बोलति करि शोर।
जथा कीरतन सुनि जग्यासी। बसहि रिदे पुन गाई प्रकाशी।
बहु जल पाई मुदति भे मीन। जथा सिक्ख गुरु प्रेम प्रबीन।
सरिता को प्रवाह बहु बाढ़ा। जुग कंडनि ते जल बहु काढ़ा।
बड़े बेग ते बगहि प्रवाहू। काशट बहे जाइ गन मोहू।
नीर नवीन मलीन सुपीन। तर जुति तट को ढाहनि कीनि।
सहत अनेक बिकार अशेखू। हतहि ग्यान जिम राग रु दोखू।

(1994)

सौंदर्य की भारतीय परिकल्पना

सुष्मिता सेन के विश्वसुंदरी चुने जाने पर देश-भर में उत्साह और उल्लास व्याप्त है। इससे जहां भारतीय सौंदर्य को प्रतिष्ठा मिली है, वहीं भारतीय नारी के आत्मविश्वास, दृढ़ता व संकल्प को भी नया बल मिला है। लेकिन, पश्चिमी बंगाल की वामपंथी पत्रिका 'गणशक्ति' ने सौंदर्य-प्रतियोगिता को सामंती-प्रथा का आधुनिक बुर्जुआ रूप कहकर इसकी भर्त्सना की है और सुष्मिता सेन की उसमें भाग लेने की आलोचना की है।

'सौंदर्य' ईश्वरीय विभूति है। महाकवि जयशंकर 'प्रसाद' ने 'कामायनी' में सौंदर्य को चेतना का उज्ज्वल वरदान कहा है—

"उज्ज्वल वरदान चेतना का, सौंदर्य जिसे सब कहते हैं।"

सौंदर्य दो प्रकार का होता है—आंतरिक और बाह्य। ममता, प्रेम, दया, करुणा, सौम्यता, कोमलता, शील, सहिष्णुता आदि नारी के आंतरिक सौंदर्य के लक्षण हैं और संतुलित-सुडौल देह-यष्टि, लावण्यमय मुखमंडल तथा आकर्षक-मनमोहक हाव-भाव उसका बाह्य-शारीरिक सौंदर्य प्रकट करते हैं।

महाकवि कालिदास ने नित-नवीन उन्मेश को प्राप्त करने वाले रूप को सौंदर्य का श्रेष्ठ प्रतिमान माना है। कवि मतिराम ने कहा है कि उत्तम सौंदर्य वह है, जिसे ज्यों-ज्यों निकट से देखा जाए, वह त्यों-त्यों और अधिक निखरता जाता है।

भारतीय परंपरा में सौंदर्य के अपने प्रतिमान हैं। प्राचीनकाल की प्रस्तर, कांस्य, काष्ठ आदि की मूर्तियों व विभिन्न शैलियों के चित्रों में ये प्रतिमान उभर कर सामने आए हैं। सैंकड़ों कवियों ने नायिकाओं के अनेकानेक भेदोपभेद करके उनके नख-शिख का मोहक सौंदर्य-वर्णन किया है और उनकी केशराशि, वेणी, ललाट, नेत्र, भौं, नासिका, मुख, ओष्ठ, दंत, ग्रीवा, चिबुक, वक्ष, नाभि, कटि, नितंब, जंघा, चरण, नख आदि सभी अंगों की बनावट, शोभा व सौष्ठव

का वर्णन करके समुचित साम्यविधान द्वारा उनकी 'सुंदरता के प्रतिमान' स्थापित किए हैं। केवल नेत्रों के विविधतापूर्ण सौंदर्य के लिए उनकी प्रफुल्लता, सजलता, विशालता, तीक्ष्णता, रंजकता, श्यामता, चपलता, वक्रता, मधुरता, सरसता, मादकता, मोहकता आदि को प्रकट करने के लिए हजारों छंद लिखे गए हैं। 'कमल-नयन', 'खंजन-नयन', 'मृग-नयन', 'मीनाक्षी' नेत्रों की सुंदरता को उजागर करने वाले कुछ प्रसिद्ध प्रतिमान रूप हैं। इसी तरह स्त्री की सुंदर गति के लिए गज-गामिनी, हंसनि, हरणि, मोरनि आदि प्रतिमानों के रूप में प्रस्तुत किये गये हैं। नारी के सौंदर्य के अनुरूप और सौंदर्य में वृद्धि करने में समर्थ उनकी सुंदर वेशभूषा, आभूषणों व शृंगार-प्रसाधनों का भी विस्तार से निरूपण हुआ है। वस्तुतः, भारतीय-परंपरा में 'सौंदर्य' के स्वरूप, प्रतिमानों, विधायक तत्त्वों आदि पर विस्तार से चिंतन हुआ है और भारतीय सौंदर्य के मानक प्रतिमानों की स्थापना हुई है। यदि 'मोनालिसा' पश्चिमी सौंदर्य का प्रतिमान है, तो किशनगढ़ शैली में रचित 'बनीठनी' जी मध्ययुगीन भारतीय सौंदर्य-बोध का अच्छा उदाहरण है।

इस मध्ययुगीन सौंदर्य-बोध पर सामंती संस्कृति का लेबिल लगाकर उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती, यद्यपि उस युग की सौंदर्य-दृष्टि में रसिकता थी, इससे इंकार नहीं किया जा सकता। भारत में सौंदर्य प्रतियोगिताओं की भी एक परंपरा थी। 'नगरवधू' इस परंपरा का एक रूप था जिसमें सौंदर्य के साथ नृत्य, संगीत, गायन में निपुणता तथा बुद्धि कौशल का भी महत्त्व था। 'नगरवधुएं' राज्य का गौरव होती थीं और उन्हें सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। वस्तुतः, भारतीय सौंदर्य-दृष्टि आंतरिक एवं शारीरिक सौंदर्य, दोनों के समन्वय में विश्वास करती है। समता, सामंजस्य, संतुलन, सौष्ठव शारीरिक सौंदर्य के विधायक तत्त्व हैं और ममता, प्रेम, त्याग, करुणा आदि आंतरिक सौंदर्य के। न तो अत्यंत गुणवान, विवेकशील, सहृदय किंतु कुरूप स्त्री सभी को विमुग्ध कर सकती हैं और न ही अत्यंत रूपवती किंतु कर्कशा, कुबुद्धि व कुलटा स्त्री।

आज के युग की परिस्थितियां, परिवेश, चुनौतियां और ज़रूरतें बहुत बदल गई हैं। दूरदर्शन व अन्य संचार माध्यमों ने विश्व की संस्कृतियों को आमने-सामने ला खड़ा किया है। एक-दूसरे से कटकर एकांतवासी होकर जीना आज सम्भव नहीं है। नारी आज घर की चारदीवारी से बाहर जीवन

के हर क्षेत्र में आगे बढ़ रही है। उसमें तेजस्विता, योग्यता, क्षमता, आत्मविश्वास और आत्मनिर्भरता है। विज्ञापन की दुनिया ने महिलाओं के लिए यश और अर्थ-लाभ के जो नये क्षितिज उद्घाटित किये हैं, उनको भी अनदेखा नहीं किया जा सकता। इसलिये सौंदर्य की प्रतिमूर्ति नारी को हम सौंदर्य प्रतियोगिताओं में भाग लेने से वंचित नहीं कर सकते। लेकिन, इतना ज़रूर देखना होगा कि चमक-दमक की इस प्रतिस्पर्धा में एवरेस्ट-शिखरों पर विजय पाने वाली तथा ज्ञान-विज्ञान व प्रशासन में सर्वोच्च कीर्तिमान स्थापित करने वाली आज की जागरूक, प्रतिभाशाली और साहसी महिला, अपने अंगों के नग्न प्रदर्शन से, समाज के स्थापित आदर्शों और अपनी संस्कृति के मूलभूत मूल्यों की सीमा को तो नहीं लांघ रही है। वह कुछ ऐसा तो नहीं कर रही, जिससे 'नारी' की 'गरिमा' लांछित हो और वह बुर्जुवा वर्ग की कथित लालसाओं का मोहरा नहीं बन रही हो।

(1994)

फिल्मी मुकाबले

जी. टी. वी. पर फिल्मी अंताक्षरी देखते हुए मुझे अपने स्कूल के दिनों की याद ताज़ा हो आई, जब हमारी कक्षा को दो दलों में बांटकर, या किसी दूसरी कक्षा के साथ हमारा अंताक्षरी का मुकाबला हुआ करता था और अपने प्रतिद्वंद्वियों पर विजय पाने के लिए हम हफ्तों भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, मैथिलीशरण गुप्त, सोहनलाल द्विवेदी, सुभद्राकुमारी चौहान, जयशंकर प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी वर्मा, दिनकर, बच्चन, इकबाल, दाग व गालिब आदि की कविताएं याद किया करते थे। लेकिन, अब तो जैसे सबकुछ बदल गया है। अब तो अंताक्षरी में किसी फिल्मी गाने के अंतिम शब्द को लेकर गाना गाना, कोई दृश्य या संवाद देखकर आगे या पीछे का गाना सुनाना, एक गाने से दूसरा गाना जोड़ना या किसी गाने के अंतरे से पहला मुखड़ा बताना होता है।

जी. टी. वी. हो या मैट्रो चैनल, कविताओं के वैसे मुकाबलों के स्थान अब ऐसी फिल्मी अंताक्षरी अथवा 'सुपरहिट मुकाबले', 'क्या सीन है', 'सितारों का कारवां', 'हीरो', 'कल आज और कल', 'मैट्रो धमाका राउंड', 'फिल्म दीवाने' आदि कार्यक्रमों ने ले लिया है, जिनमें विविध फिल्मों से संबंधित प्रश्नोत्तर व क्विज शामिल हैं।

किसी फिल्म का निर्देशक, संगीतकार, गायक, नायक या नायिका कौन है, कोई फिल्मी दृश्य या गीत किस फिल्म का है और वह किस नायिका पर कहां फिल्माया गया है, किसी धुन का संगीतकार कौन है, किशोर कुमार द्वारा निर्देशित या वहीदा रहमान व गुरुदत्त की पांच फिल्में कौन-सी हैं, 1985 में कितनी फिल्में बनीं, 1990 की अमुक नायिका की हिट या फ्लॉप फिल्में कौन-सी थीं, किसी फिल्म पर हॉलीवुड की किस फिल्म का प्रभाव है, शूटिंग करते समय कौन-सा नायक घोड़े से गिरकर मरा था, किस नायिका ने सर्वप्रथम किस फिल्म में सिगरेट पी थी अथवा स्विमिंग सूट में आई थी, किसी फिल्म

में बैंक किसने लूटा था, डाके किसने डाले थे, पुलिस इंस्पेक्टर को किसने मारा था, स्मगलिंग डॉन कौन था, कितने और किसके बलात्कार हुए थे, कितनी हत्याएं हुई थीं, पांचवी मंजिल से कौन-सा हीरो कूदा था, रेल के ऊपर, हवाई जहाज़ में, समुद्री बोट में या दलदल में किसकी लड़ाई हुई थी, बांसुरी किसने बजाई थी, चिंगम कौन चबाता रहता था, इत्यादि हज़ारों प्रश्न पूछे जाते हैं और पूछे जा सकते हैं और दर्शकों के मनोरंजन के लिए वे दृश्य भी दिखाए जाते हैं।

इन मुकाबलों के संयोजक जहां तरह-तरह के प्रश्न बनाकर अपने बुद्धि-चातुर्य का परिचय देते हैं, वहीं संभागी युवक-युवतियां उनके सही उत्तर देकर फिल्मी ज्ञान की अपनी विलक्षणता व कुशाग्रता का प्रदर्शन करके हवाई यात्रा, होटलों में ठहरने, रंगीन टी. वी., टू-इन-वन, डिश ऐंटेना, वॉशिंग मशीन, पंखा, और हजारों रुपए के उपहारों के इनाम पाते हैं। देशभर से फिल्म-क्विज का ठीक उत्तर देनेवाले दर्शकों को भी ढेरों पुरस्कार दिए जाते हैं। इसीलिए ये कार्यक्रम काफी लोकप्रिय हो रहे हैं तथा इन्हें स्पॉनसर करनेवाले व्यापारी प्रतिष्ठान अपनी उपभोक्ता वस्तुओं का प्रभावी रूप में विज्ञापन कर रहे हैं।

लेकिन, यहां विचारणीय प्रश्न यह है कि समाज के लिए इनकी कितनी सार्थकता और उपयोगिता है?

मनोरंजन तो हर आदमी चाहता है। एक ज़माना था जब शास्त्रीय संगीत, रागों, नृत्य, चित्र, काव्य आदि ललित कलाएं मनोरंजन का मुख्य साधन थीं, और इनसे जो रस व आनंद मिलता था, उसे 'ब्रह्मानंद सहोदर' कहा जाता था। आम आदमी तमाशा, यात्रा, स्वांग, नौटंकी आदि लोक-नाट्यों, लोकगीतों, लोकनृत्यों व पहेलियों आदि से भी अपना मनोरंजन करते थे, जिनमें ताज़ा हवा का संगीत और उनकी मिट्टी की सौंधी सुगंध होती थी, जो उनके मन को आह्लादित कर देती थी। 'एक थाल मोती से भरा, सबके सिर पर औंधा धरा। चारों ओर वह थाली फिरे, मोती उससे एक न गिरे'। एवं 'वह आवै तब शादी होए, उस बिन दूजा और न कोए। मीठे लागें वा के बोल, कह सखी साजन? ना सखी ढोल।

खुसरों की ऐसी पहेलियों व मुकरियों में ऐसी निर्मल रोचकता है कि ये आज भी हमारा मन लुभाती हैं। इसी तरह—

'हरी थी, मन भरी थी, लाख मोती जड़ी थी,
राजा जी के बाग में दोशाला ओढ़े खड़ी थी'

जैसी सैंकड़ों पहेलियां परंपरा से सामान्य लोगों का मनोरंजन करती रही हैं, जिनके सुलझाने में हल्का-सा बौद्धिक प्रयास भी करना पड़ता है। लेकिन, ज्ञान, विज्ञान के नए प्रकाश से हमारा मानसिक एवं बौद्धिक क्षितिज इतना विस्तृत हो गया है कि इस तरह की पहेलियां अब अच्छी तरह हमारा मन नहीं बहला सकतीं। फिल्मों के मनोरंजन के सामने तो ये बहुत फीकी पड़ गई हैं। इसलिए टी. वी. पर, जो कि इस युग की एक चमत्कारपूर्ण उपलब्धि है, मनोरंजन के लिए कभी-कभार इस तरह के फिल्मी कार्यक्रम देखने में कोई बुराई नहीं है, लेकिन फिल्मी मुकाबलों के ज़रिये युवा-पीढ़ी को इनकी लत डालना, उनमें फिल्मी-ज्ञान के विशेषज्ञ बनने की ललक पैदा करना अथवा उन्हें 'फिल्मी-कोश' बनाना कदापि उचित नहीं है।

दुर्भाग्य से हमारा युवा-वर्ग बड़ी संख्या में इस चमकीली माया-पुरी की ओर आकृष्ट हो रहा है। चिंता का विषय यही है कि आखिर वह किस दिशा में जा रहा है। उनके जीवन पर इन कार्यक्रमों का बड़ा कुत्सित प्रभाव पड़ रहा है। ये दृश्य उनके मन और मस्तिष्क पर छाते जा रहे हैं। उनमें उदात्तता, सौम्यता एवं शालीनता के स्थान पर उद्दंडता, उच्छृंखलता, रसिकता व उत्तेजना पनप रही है। मनोवृत्तियों में विकार उत्पन्न हो रहे हैं और सर्वथा भोगवादी जीवन के प्रति प्रवृत्ति बढ़ रही है।

जिन युवक-युवतियों को आई. ए. एस. जैसी प्रशासनिक सेवाओं व मेडिकल, इंजीनियरिंग, एम. बी. ए. आदि की प्रवेश-परीक्षाओं में सफलता पाने के लिए इतिहास, पुरातत्त्व, भूगोल, खगोल, उद्योग, विज्ञान, कृषि, साहित्य, संस्कृति, दर्शन, भाषा आदि विषयों का सामान्य ज्ञान प्राप्त करने के लिए इन विषयों की पुस्तकें, विश्वकोश व पत्र-पत्रिकाएं पढ़ने में समय लगाना चाहिए और इन्हीं पर क्विज सुलझाने में रुचि लेनी चाहिए, वे फिल्मी मुकाबलों के संभावित प्रश्नों और उनके उत्तर खोजने के लिए सैंकड़ों फिल्मों के कैसेट देखने में, फिल्मी पुस्तकें व पत्रिकाएं पढ़ने में अपना मूल्यवान समय नष्ट कर रहे हैं।

वस्तुतः, हमारे जैसे विकासशील देश के लिए टी. वी. का एक सामाजिक उत्तरदायित्व भी है। मनोरंजन और विज्ञापनों के साथ-साथ समाज के उत्थान

में भी उसे भागीदार होना चाहिए। ऐसे कार्यक्रम होने चाहिए, जिनसे युवा-वर्ग का ज्ञान समृद्ध हो, जो उनके भविष्य की कामयाबी के लिए ठीक दिशा निर्दिष्ट करें, उदात्त जीवन मूल्यों में उनकी निष्ठा को दृढ़ करें, जीवन की वास्तविकताओं का सामना करने में उन्हें सक्षम बनाएं, ताकि वे अपने परिवार एवं समाज की आकांक्षाओं को पूरा कर सकें।

मनोरंजन भी स्वच्छ, सुरुचिपूर्ण, स्वस्थ, परिष्कृत एवं उदात्त होना चाहिए।

(1994)

"सांस्कृतिक प्रदूषण"

पिछले वर्ष मुम्बई गया तो वर्षा ऋतु में समुद्र की उत्ताल तरंगें देखने को मन हुआ। जुहू व मडआईलैण्ड बीच पर देखा कि मुम्बई का कचरा समुद्र की लहरों पर थरथरा रहा है। मन बहुत क्लान्त हो उठा। लगा जैसे सागर के हृदय पटल पर फफोले उभर आए हैं।

जल-थल में सर्वत्र प्रदूषण फैला हुआ है। एक ओर गंगा और यमुना का पवित्र जल विषैला हो रहा है, तो दूसरी ओर महानगरों के दमघोट वायुमंडल में सांस लेना दूभर हो रहा है।

निःसंदेह, वातावरण का प्रदूषण हमारे स्वास्थ्य के लिए खतरा बन गया है। इस प्रदूषण से मुक्ति पाने के लिए अनेक स्तरों पर प्रयास भी किए जा रहे हैं। किंतु, इस प्रदूषण से भी कहीं भंयकर है—'सांस्कृतिक प्रदूषण',—आचार-विचार; मन और मस्तिष्क का प्रदूषण; जो समस्त 'मानवता' के लिए संकट बनता जा रहा है। अफसोस तो यह है कि इसके निराकरण के लिए कोई कारगर प्रयत्न भी नहीं हो रहे हैं। हमारे अपने देश में भी यह विष हमारे राष्ट्रीय जीवन की रगों में तेज़ी से फैलता जा रहा है।

'संस्कृति' हमारे स्नायुओं में प्रवाहित होने वाले स्वच्छ एवं स्वस्थ रक्त के समान हमारा प्राण-तत्त्व है। किसी व्यक्ति का रक्त विषाक्त हो जाए तो 'डाईलेसिस' भी बहुत समय तक उसे बचा नहीं सकता। इसी प्रकार यदि हमारे आचार-विचार, रीति-नीति, धर्म-कर्म, कला-कौशल प्रदूषित हो जाएं, तो राष्ट्रीय जीवन को भारी क्षति पहुंचती है; क्योंकि यही तत्त्व हमारी राजनीतिक, सामाजिक, नैतिक एवं आर्थिक व्यवस्था को संचालित एवं शासित करते हैं।

व्यक्ति, समाज और राष्ट्र में सर्वत्र दैवी एवं आसुरी प्रवृत्तियों का संघर्ष है। कुरुक्षेत्र में जुटे पांडव दैवी प्रवृत्तियों के प्रतीक हैं और कौरव आसुरी

वृत्ति के। महाराज करु ने इसी कुरुक्षेत्र में सत्य, दया, पवित्रता आदि 'अष्टांगमहाधर्मों का बीजारोपण किया था। 'वेदों', 'उपनिषदों', 'महाभारत' व 'गीता' में इन्हीं सद्वृत्तियों का प्रतिपादन हुआ है। 'ऋग्वेद' में कहा गया है कि "पारस्परिक सहयोग और सहायता करना मानवता का प्रथम कर्त्तव्य है।" 'अर्थवेद ' में भी प्रार्थना की गई है कि "हे प्रभु! मुझ पर ऐसी कृपा कीजिए कि मैं मनुष्य मात्र के प्रति सद्भाव रख सकूं।"

लेकिन, आज सत्ता लोलुपता और धन की ऐषणा ने मानव को सन्मार्ग से विमुख कर दिया है। वह 'मनमुख' हो गया है।

राजनीति में स्वार्थ और अपराधीकरण बढ़ रहा है, जिसके कारण बहुत से घोटाले हुए हैं। असमानता, असहिष्णुता एवं अविश्वास के कारण सामाजिक एवं पारिवारिक जीवन में दरारें पड़ रही हैं। हिंसा, दुराचार और दुष्कर्म बढ़ रहे हैं। नैतिक मूल्यों का ह्रास हो रहा है और आर्थिक अपराध बढ़ रहे हैं। हमारा राष्ट्रीय चरित्र गिर रहा है। वासनाएं मर्यादाओं का उल्लंघन कर वायुवेग से बढ़ती जा रही है। आग की लपटें सभ्यता और संस्कृति का दहन कर रही हैं। चारों ओर भय, अविश्वास, स्वार्थ, हिंसा, अनैतिकता, विद्वेष का वातावरण छाया हुआ है। भ्रष्टाचार, बलात्कार और हत्याएं बढ़ती जा रही हैं। आतंकवाद से मानवता संत्रस्त है। यह सब 'सांस्कृतिक प्रदूषण' का ही परिणाम है।

बहुत बार सांस्कृतिक कार्यक्रमों के नाम पर भी भौंडे प्रदर्शन होते हैं, जो लोगों की कलात्मक अभिरुचियों का परिष्कार करने की बजाए उन्हें भ्रष्ट करते हैं। हमारे यहां सभी ललित कलाओं का उद्देश्य 'रसानन्द' प्रदान करना रहा है, जिसे 'बह्मानन्द' के समान कहा गया है। कलाएं हमारी चित्तवृत्तियों का परिष्कार करके उन्हें उदात्त बनाती हैं। आत्मा को शांति देती हैं। 'सत्यं शिवं सुंदरम्' की सृष्टि करती हैं। पर आज अधिकांश फिल्मों और टी. वी. सीरियलों व अन्य कार्यक्रमों में अनैतिक यौन संबंधों, अश्लील अंग प्रदर्शन, कामोत्तेजक मुद्राओं के प्रदर्शन से उत्तेजना और विलासवृत्ति तथा हिंसा की प्रवत्ति को प्रोत्साहन दिया जा रहा है। व्यवसायीकरण के नाम पर भी 'सांस्कृतिक प्रदूषण' बढ़ता जा रहा है। हमारे मन और मस्तिष्क को विकृत किया जा रहा है और आचरण दूषित हो रहा है। 'अंदाज' और 'स्वाभिमान' जैसे विकृत मानसिकता से युक्त सीरियल लंबे समय से चलते हो चले जा

रहे हैं। ऐसे सीरियलों को देखकर लगता है कि हमारे समाज में जैसे कोई पवित्र रिश्ता रह ही नहीं गया है। सब स्त्री, पुरुष, युवक, युवतियां इधर-उधर उलझे हुए हैं। तरह-तरह के फिल्मी मुकाबलों से युवा पीढ़ी के बुद्धि बल को नष्ट किया जा रहा है। वस्तुतः प्राइवेट चैनलों के भी सभी कार्यक्रमों की यथोचित समीक्षा होती रहनी चाहिए जिससे वे हमारे सांस्कृतिक जीवन को प्रदूषित न करें। उन पर यथोचित अनुशासन रखा जाना चाहिए। पश्चिमी देशों से हो रहे सांस्कृतिक आक्रमण को भी रोकना ज़रूरी है। ऐसे कार्यक्रम होने चाहिएं जो सामाजिक परिवर्तन को स्वस्थ दिशा दें।

एक कहावत है—"war begins in the mind of man अर्थात् युद्ध के बीज मानव-मन की सोच में निहित होते हैं। मन और मस्तिष्क की मलिनता के कारण ही मनुष्य उचित एवं अनुचित का विवेक खो बैठता है और असत् विचार तथा असत् कर्मों में प्रवृत्त हो जाता है।

मानव-मन की परम सिद्धि और उसकी परम संपत्ति उसके आचरण में निहित है। आचरण के अभाव में विद्या, बल, धन आसुरी माया बनकर मानवता का विनाश करने लगते है। इसीलिए भगवान कृष्ण ने 'गीता' में कहा है—"आचारः परमो धर्मः"। विकारग्रस्त मलिन मानव के अंतःकरण को "योगः कर्मसु कौशलं" से ही निर्मल बनाया जा सकता है और सदाचार की ओर प्रवृत्त किया जा सकता है।

ज्ञान शुद्ध हो, इच्छा शुद्ध हो, क्रिया शुद्ध हो तभी सच्चे सुख की प्राप्ति होती है और यह 'सांस्कृतिक प्रदूषण' के निराकरण से ही संभव है।

आज राजनीतिक, सामाजिक, नैतिक, शैक्षिक, आर्थिक सभी स्तरों पर इस 'सांस्कृतिक प्रदूषण' के विरुद्ध लड़ने की आवश्यकता है और यह कार्य बुद्धिजीवी, पत्रकार व शिक्षक वर्ग ही कारगार ढंग से, लोगों के मन और मस्तिष्क में परिवर्तन लाकर, उन्हें 'शुभ कर्मों' की ओर प्रवृत्त करके, कर सकता है।

(1998)

'शक्ति' को है नमन

जीवन में कभी-कभी ऐसी-ऐसी घटनाएं घटित हो जाती हैं कि सालों-साल बीत जाने पर भी वे नए-नए संदर्भों में नए-नए रूप-आकार के साथ सामने आकर खड़ी हो जाती हैं।

बात सन् 1958 या 1959 की है। विनोबा जी पंजाब की यात्रा पर आए हुए थे। उस समय उनके 'सर्वोदय आंदोलन' की बड़ी धूम मची थी। एक रात वे जिस नगर में ठहरे थे, मैं वहां के एक कॉलेज में प्राध्यापक था। विनोबा जी का नियम था, प्रतिदिन प्रातः 4 बजे पद-यात्रा पर निकलते थे। उस समय वे मौन रहते थे और लिखकर प्रश्नों के उत्तर देते थे। उस दिन लालटेनों की रोशनी में उस पद यात्रा में मैं भी शामिल हुआ था। उन दिनों विनोबा जी 'शांति सेना' बनाने की बहुत चर्चा करते थे। उस पद-यात्रा में मैंने उनसे एक प्रश्न पूछा था कि यदि किसी समय चीन भारत पर आक्रमण कर देता है, तो क्या आपकी 'शांति सेना' उसके सैनिकों को सरहदों के उस पार रोक सकेगी?

उन दिनों 'पंचशील' और 'हिन्दी-चीनी भाई-भाई' के नारों की गूंज ज़ोरों से सुनाई देती थी। कोई यह कल्पना भी नहीं कर सकता था कि चीन कभी भारत पर आक्रमण भी कर सकता है। पर पता नहीं मेरे भीतर बैठे किसी भविष्यदृष्टा ने यह प्रश्न विनोबा जी से कैसे पूछ लिया। मुझे आज भी इस पर आश्चर्य हो रहा है। मेरे प्रश्न के उत्तर में विनोबा जी ने लिखकर दिया था कि यह प्रश्न बहुत ही महत्त्वपूर्ण है, वे उसका उत्तर सायंकाल की जनसभा में देंगे।

सायंकाल में सभा हुई। लेकिन, कुछ नवयुवकों की उद्दंडता के कारण विनोबा जी ने सभा समाप्त कर दी और बिना कुछ बोले उठकर चले गए। मैं अपने प्रश्न का उत्तर खोजता ही रह गया। पर मुझे तब भी लगता था और आज भी लगता है कि बिनोबा जी के पास मेरे प्रश्न का कोई उत्तर नहीं था। वे जानते थे कि बौद्ध भिक्षुओं की कतारें अपने 'शांतिपाठ' से हूण आक्रान्ताओं को नहीं रोक सकी थीं और न ही उनकी 'शांति सेना'

चीनी आक्रमणकारियों को रोक सकती थी।

जब कोई प्रश्न आकार धारण कर लेता है, वह उत्तर पाए बिना नष्ट थोड़े ही होता है। अतः, मेरा प्रश्न ज्यों का त्यों बना रहा। उसका उत्तर मिला सन् 1962 में जब चीनी सेना टिड्डीदल की तरह दनादन गोलियों की बौछार करती हुई हमारी सीमाओं में घुस आई और हमारे बहुत से सैनिक हताहत हुए और हमें भारी अपमान का मुंह देखना पड़ा। नेहरू जी बड़े दूरदर्शी राजनीतिज्ञ थे, पर यहां वे भी धोका खा गए। वे कवि हृदय भावुक व्यक्ति थे। चीनियों के इस विश्वासघात से उन्हें बहुत आघात पहुंचा। वे उसे सह नहीं पाए।

गुरु तेग़बहादुर ने कहा था—

भय काहू कउ देति नहिं, नहिं भय मानत आनि।
कहु नानक सुनि रे मना, ग्यानि ताहि बखानि।।

न किसी को भय दिखाना और न किसी का भय मानना। यही हमारे राष्ट्र का आदर्श रहा है। पर यह विश्व 'शक्ति' को नमन करता है। सबल से डरता है और निर्बल को डराता है। हम इस तथ्य को भी जानते और पहचानते हैं। तभी हमारे यहां शक्ति-स्वरूपा, सिंहवाहिनी, अस्त्रधारी, अष्टभुजा मां दुर्गा की उपासना की जाती है।

संस्कृत की एक पुरानी प्रसिद्ध उक्ति है—'शस्त्रेण रक्षिते राष्ट्रे शास्त्र उपाद्यते।' शस्त्र द्वारा रक्षित राष्ट्र में ही ज्ञान-विज्ञान का विकास हो सकता है और समृद्धि और सम्मान संभव है। भगवान कृष्ण ने भी 'गीता' में कहा था कि "हे अर्जुन! तुझे वीरों की भांति कर्त्तव्यकर्म करना चाहिए। कायरता वीरों को शोभा नहीं देती।"

इधर जब-जब भी हमने पाकिस्तान के साथ समझौते करने का प्रयास किया उसका प्रत्युत्तर हमें और ज़्यादा आतंकवाद और जम्मू-कश्मीर में निरापराध निरीह लोगों की निर्मम हत्याओं से मिलता रहा। हमें यह जान लेना चाहिए कि संधि की लकीरें भी शक्ति की नोक से लिखी जाती हैं। तभी राष्ट्रकवि 'दिनकर' ने कहा था —

संधि वचन संपूज्य उसी का,
जिसमें शक्ति विजय की।।

पोखरन के परमाणु परीक्षणों का इसी व्यापक संदर्भ में मूल्यांकन किया जाना चाहिए। इन परीक्षणों से 90 करोड़ भारतवासियों के इस देश ने अपनी

शक्ति का परिचय विश्व को दिया है। इससे हमारा आत्मबल, आत्मविश्वास, प्रतिष्ठा, स्वाभिमान और गौरव बढ़ा है। यह सब भारतीयों के लिए गर्व का विषय है। अब हमारे पड़ौसी बहुत सोच-समझकर ही अपनी टेढ़ी आंख इधर उठा पाएंगे।

यह शक्ति परीक्षण हमारे वैज्ञानिकों की तपस्या, साधना और परिश्रम का फल है। यह उनकी उपलब्धि है। इसका सारा श्रेय उन्हीं को जाता है। पिछले 50 वर्षों में सभी सरकारों ने परमाणु कार्यक्रम को सफल बनाने में सक्रिय योगदान दिया है। अतः, वे सभी इस उपलब्धि के भागीदार हैं। पर परीक्षण करने का निर्णय लेने का श्रेय तो अटल जी को देना ही पड़ेगा। उन्होंने जिस दृढ़ता, साहस, निर्भीकता, संकल्प-शक्ति और आत्मविश्वास से यह निर्णय लिया है, उसकी सराहना करनी ही पड़ेगी।

अमेरीका तथा कुछ अन्य देशों ने आर्थिक प्रतिबंधों की जो घोषणाएं की हैं, उनसे भारत घबराने वाला नहीं है। आत्मरक्षा और आत्मसम्मान के लिए यदि कुछ कीमत चुकानी भी पड़ती है तो इससे हम विचलित होने वाले नहीं हैं। जब-जब भी देश पर संकट आए हैं, भारत की जनता ने एकजुट होकर बड़ी दृढ़ता और साहस के साथ उनका सामना किया है। वैसे भी इन प्रतिबंधों का अमेरीका के व्यापार व उद्योग पर कम असर नहीं पड़ेगा और हमें इसका सीधा लाभ यह होगा कि 'स्वदेशी' के हमारे 'राष्ट्रीय एजंडे' को सफल बनाने में इससे बहुत प्रश्रय मिलेगा। भारत के प्रधानमंत्री ने जिस संयम, धैर्य, दृढ़ता और संतुलित ढंग से कथित प्रतिबंधों के संबंध में अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की है, वह उनके दृढ़ व्यक्तित्व के अनुकूल है और भारत जैसे महान् देश की गरिमा की परिचायक है।

गुरु गोबिंद सिंह की सेना-प्रस्थान के प्रभाव का चित्रण करते हुए उनके एक दरबारी कवि सेनापति ने लिखा था—

'डंकन घोर सु घोर भई, सुनि कै पुरियां सब ही लरजीं।
लरजे सब भान भिआन भए, किह कारन काज चढ्यो हरिजी।
लोक अलोक सभे लरजे, सिब जी कैलासपति से डरजी।
सुन सेस महेस सुरेस बड़े लरजे सिंह गोबिंद के डरजी।

पोखरण के धमाकों से कुछ ऐसी ही दशा इस्लामाबाद, वाशिंगटन और बेजिंग की हुई है।

(1998)

कुरुक्षेत्र में सूर्य-ग्रहण पर्व

लगभग दो मास से सूर्य-ग्रहण मेले की तैयारी होते देख रहा हूं। पीपली रोड़ पर नए बस-स्टैंड से लेकर रेलवे-स्टेशन तक और वहां से विश्वविद्यालय परिसर तक, 48 किलोमीटर क्षेत्रफल में, नगर के संपूर्ण बाहरी भाग का कायाकल्प हो रहा है। अनेक अधिकारी एवं असंख्य कर्मचारी सरोवरों की सफाई, सड़कों की मरम्मत, जल-बिजली, यातायात, स्वास्थ्य-सेवा, सफाई एवं खाद्य-सामग्री आदि की व्यवस्था में जुटे हुए हैं।

मेला-क्षेत्र में एक नया नगर उभरता आ रहा है। टैंटों-शामियानों का नगर। मंदिरों, सिनेमाघरों, कार्यालयों, दुकानों को हरे, पीले, गेरुए, सफेद रंगों से पोता गया है। सरोवरों को साफ किया गया है और उनमें स्वच्छ व निर्मल जल भरा जा रहा है। 14 फरवरी, 1980 शिवरात्रि तक स्थानेश्वर की यह प्राचीन गौरवशाली नगरी सज-धजकर नव-नवेली दुल्हन-सी 15 लाख श्रद्धालु तीर्थ-यात्रिओं के स्वागत हेतु प्रतीक्षारत दिखाई पड़ रही है।

14 फरवरी, शिवरात्रि का पर्व है। रात्रि के 8 बजे हैं। मैं ब्रह्मसरोवर के भीतर स्थित सर्वेश्वर महादेव के मंदिर में खड़ा इस विशाल एवं भव्य सरोवर के निर्मल जल में झिलमिलाती दीपमाला को देख रहा हूं। लगभग 2 लाख यात्री पहुँच चुके हैं। इनमें से अधिकतर व्यवस्था कर्मचारी, दुकानदार, साधु, सर्कस वाले तथा भिखारी अधिक हैं। दूसरे तीर्थयात्री भी हैं, पर कम।

सरोवरों के चारों ओर के घाटों पर बने बरामदों और उनके भीतर के खुले-कमरों में, जिनकी संख्या लगभग 500 है, कई यात्री पड़े हैं। कुछ घाटों पर बिखरे पड़े हैं। आकाश में बादल छाए हैं, शीत पवन चल रही है। बहुत कम लोग ऐसे हैं जिनके पास कंबल या रजाई है। अधिकतर साधु लोग हैं या भिखारी, जिनके पास तन ढंकने को भी वस्त्र नहीं। सर्दी बढ़ती जा रही है। यदि वर्षा तेज़ हो गई तो? लेकिन मेरी चिंता निराधार है। लगता है,

इन्हें ऐसी कोई चिंता नहीं है। वे आस्तिकता का कवच पहने हुए हैं। सरोवर के चारों ओर बिजली के हजारों बल्बों की वंदनवार टंगी है। लाल पत्थर के घाटों पर स्थित खंभों पर लगी श्वेत मर्करी लाइट, सर्वेश्वर महादेव मंदिर की जगमग दीप सज्जा--अत्यंत मोहक दृश्य। मेरी चेतना में पूर्णिमा की दीपमाला से देदीप्यमान अमृतसर का स्वर्ण-मंदिर उभर आता है। उसके मस्तक पर चमकता पूर्ण चंद्र। अमृत सरोवर में बिंबित स्वर्ण-मंदिर की मनोहर जगमग छवि, चंद्रमा का वह टीका, 'महादेव' के मस्तक पर आज नहीं है। वह तो आज दूसरी ही यात्रा पर है—सूर्य-ग्रहण की यात्रा पर। किंतु सारा दृश्य उस दृश्य से कहीं अधिक मोहक जान पड़ता है। मैं स्मृतियों के कुंजों में खोया हुआ हूं, तभी एक आवाज़ सुनकर चौंकता हूं—'देश के सभी तीर्थ-स्थान देखे, किंतु इतना सुंदर, सजा हुआ, स्थान नहीं देखा।' पूछने पर ज्ञात हुआ, वह गुजरात से आए हैं। मंत्रमुग्ध ब्रह्मसरोवर की स्वप्निल शोभा को निहारे जा रहे हैं। 'क्या यह दृश्य स्थायी नहीं हो सकता'—उनकी यह जिज्ञासा एक प्रश्न-चिह्न बनकर रह जाती है

15 फरवरी। सूर्य-ग्रहण की पूर्व संध्या। मेले का वातावरण उभरने लगा है। लाउड स्पीकरों से प्रसारित घोषणाओं, भजनों, दुकानदारों, भिखमंगों तथा अन्य यात्रियों का मिला-जुला स्वर शोर बनकर दूर तक छाया हुआ है। मेला-क्षेत्र में यातायात बंद हो गया है। मैं विश्वविद्यालय-परिसर के पूर्वी सीमांचल से सटे ब्रह्मसरोवर के पश्चिमी तट पर उतरता हूं। एक दृष्टि उठाकर लगभग एक मील लंबे और आधे मील विस्तार वाले सरोवर को देखता हूँ। विशाल सरोवर। पहले यह सरोवर एक ही था। अब दो भागों में बंटा हुआ है। बीच में सड़क बन गई है। पश्चिमी छोर का अभी जीर्णोद्धार होना शेष है। पूर्वी छोर नया पक्का बन गया है। खुला, गहरा सरोवर। लाल पत्थर के विस्तृत घाट, महराबें, बरामदे। सुंदर सरोवर में लहराता निर्मल जल। ऐसा भव्य सरोवर देश-भर में संभवतः दूसरा नहीं।

इधर का भाग अभी कच्चा है। मेरे सामने ईटों व चूने के बने पुराने घाट हैं। विस्तृत ऊँचे घाट। स्त्री-पुरुषों के लिए अलग-अलग। किंतु मिट्टी-काई जमे घाट, इन्हें मांज़-मांजकर साफ किया गया है, और औषधियां छिड़कर स्नान करने योग्य बनाया गया है। मैं कल्पना करता हूं उस समय की, जब इस सरोवर में सरस्वती का पावन जल भरा होता था। इसके चारों ओर

ऋषि-मुनियों, तपस्वियों के असंख्य आश्रम होंगे और जहां वेदों की ऋचाओं की रचना हुई होगी। ब्रह्मचारी वेद-पाठ करते होंगे। कई विद्यापीठ होंगे, जहां विचारगोष्ठियों में ज्ञान-गंगा प्रवाहित होती होगी, जिससे इसे 'ब्रह्मऋषि' देश की संज्ञा मिली थी। विद्यापीठ इस सरोवर के तट पर आज भी है। इसके दो तटों से सटा कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय। प्राच्य एवं पाश्चात्य विद्या का केंद्र। किंतु, वे ऋषि-मुनि, तपस्वी आज कहां हैं?

फिर मैं कल्पना करता हूं उस समय की, जब स्थाण्वीश्वर वर्धन-वंश के प्रतापी राजा हर्षवर्धन की राजधानी थी। अनेक मतों, धर्मों का केंद्र। अत्यंत वैभवशाली। तभी ये विस्तृत सुंदर घाट बने होंगे। इसके तटों पर अनेक मंदिरों का निर्माण हुआ होगा। प्राचीन रामजीमंदिर एवं हनुमानमंदिर आज भी उसकी साक्षी दे रहे हैं। नित्य प्रातः पुरवासी बड़ी संख्या में स्नान-ध्यान के लिए यहां आते होंगे। घंटों-घड़ियालों, शंखों की ध्वनि वातावरण में गूंजती होगी। प्रार्थनाओं, आरतियों, पूजा-पाठ, कथा-कीर्तन, मंत्र-गायन से वायुमंडल गुंजरित होता होगा। विशाल बड़ एवं पीपल के वृक्षों की छाया में भक्तजन ध्यान लगाकर बैठते होंगे। किंतु, अब सरोवर का यह भाग वर्षों से एकदम उपेक्षित और सूना पड़ा है। वर्षा ऋतु में चारों ओर का जल इसमें भर आता है और धीरे-धीरे गुलाबी कमलों से सारा सरोवर महकने लगता है। अपने पुरातन वैभव का प्रतीक। एक भव्य कमल सरोवर। लेकिन, इस बार न वर्षा हुई, न सरोवर भरा और न कमल ही खिले। अब भाखड़ा नहर का जल इसमें भरा गया है और मैं विस्मय-विमुग्ध उस स्वच्छ जल में उसके प्राचीन वैभव की झांकी प्रतिबिंबित होते देख रहा हूं।

ब्रह्मसरोवर के चारों ओर घूमता हूं। जगह-जगह साधुओं, संतों, महात्माओं की टोलियां जमा हैं। विशाल बड़ तथा पीपल के वृक्षों के नीचे, खुले मैदान में, लॉन पर, सड़कों के दोनों ओर। कुछ अकेले, कुछ जमातें बनाकर बैठे हैं। अलग-अलग रंगों के झंडे फहरा रहे हैं। बट वृक्ष की छाया में एक साधु ने अभी-अभी मिट्टी की एक शिव-प्रतिमा बनाकर तैयार की है। भव्य मूर्ति। एक साधु महाराज वृक्ष का सहारा लेकर एक ही पांव पर खड़े हैं। तमिलनाडु के साधु गोपालगिरी एक गहरे गड्ढे में ग्रीवा तक दबे हुए हैं। एक महाशय कांटों की सेज पर लेटे हुए हैं। ग्वालियर के बाबा लक्खगिरि भुजाओं, घुटनों, कटि एवं वक्ष में सुइयां बेंधे कीलों की शय्या पर लेटे हुए हैं। साधना के

अपने-अपने ढंग, अपनी-अपनी पद्धति। जटाधारी बाबा, भस्माभूत अवधूत, तिलकधारी पंडित, कंधे पर अंगोछा डाले पांडे, वीर वेशधारी सशस्त्र निहंग, धूने के चारों ओर मंडलाकर जमात बांधे नाथ, पंचाग्नि का सेवन करते नागा साधु। लीपे हुए आसन पर कोई शीर्षासन कर रहा है, कोई गुरु की दंडवत चरण-वंदना। एक सिर पर हांडी में अग्नि रखे मंत्र-जाप कर रहे हैं। अन्य अनेक मतों, संप्रदायों, पंथों, अखाड़ों, धूनों के साधु लोग हैं। कबीर-पंथी, निरंजनी, उदासी, सिक्ख, निर्मले, रविदासी, बाल्मीकि। ज्योतिपीठ तथा द्वारिका के शंकराचार्य। कबीरपंथ के मंदिर के सामने 'बीजक', 'पंचग्रंथी' तथा अन्य पुस्तकें मिल रही हैं। इनमें एक साधु गुजरात के हैं, एक महाराष्ट्र के, एक कानपुर के। गौड़ीय मंदिर में बंगाली अधिक ठहरे हैं। विविध धर्मों, मतों, जातियों, भाषाओं का विचित्र संगम। भारतीय सभ्यता और संस्कृति की विविधता में एकता का प्रतीक एक छोटा-सा भारत। समग्र-संपूर्ण। सांस्कृतिक तंतुओं में आबद्ध।

स्थान-स्थान पर कथा-कीर्तन हो रहा है। हरियाणा की महिलाओं की एक टोली एक लोकगीत गा रही है—'श्याम ने बजाई बंसी, बज्जइया हो तो ऐसा।' अनेक स्थानों पर यज्ञ हो रहे हैं। बाबा काली कमली वाले आश्रम और जयराम संस्कृत विद्यापीठ में अखंड यज्ञ हो रहे हैं। ब्रह्मसरोवर के तट पर 'मानव सेवा संघ' की ओर से विश्वशांति-महायज्ञ चल रहा है।

स्थान-स्थान पर भंडारे चल रहे हैं। छोटे-बड़े लगभग 500 लंगर, अनेक अन्न क्षेत्र—'हनुमान अन्न-क्षेत्र', कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय शोध-छात्र अन्न-क्षेत्र, कुरुक्षेत्र दरिद्रनारायण अन्न-क्षेत्र'। दरिद्रनारायण तो सारे मेले में फैले दिखाई पड़ रहे हैं। अध-नंगे, मैले, अपंग, भूखे, असंख्य भिखमंगे; दाने-दाने के लिए तरसते। पैसे-पैसे के लिए भटकते। लेकिन आज सूर्य-ग्रहण पर्व है, कुरुक्षेत्र की पावन धरती पर आज कोई भी भूखा नहीं रहेगा। धन्य हैं ये श्रद्धालु-भक्त, धन्य है इनकी 'दानवीरता'!

ब्रह्मसरोवर के पूर्वोत्तरी छोर पर सन्निहित सरोवर तक अनेक संस्थाओं के कैंप लगे हैं। सामने दरिद्रनारायण पंक्ति बनाकर बैठे हैं। साथ के मैदान में कुछ साधु लोग भी दिखाई पड़ रहे हैं।

ब्रह्मसरोवर के पूर्वोत्तरी छोर पर भारत के भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्री गुलज़ारीलाल नंदा की प्रस्तर-प्रतिमा स्थापित है। सरोवर के जीर्णोद्धार का

अधिक श्रेय इन्हें ही है। सरोवर के इसी छोर की महराब पर दूरदर्शन का कैमरा फिट किया जा रहा है। सरोवर के पूर्वी तट पर सड़क के एक ओर साधु संन्यासी डेरे डाले पड़े हैं। दूसरी ओर अखिल भारतीय सेवा समिति, अखिल भारतीय सनातन धर्म, सनातन धर्म महावीर दल, पंजाब मानव सेवा संघ, श्री उमा भारती मिशन, विश्वआध्यात्मिक संघ, अखिल विश्व साम्यवाद स्वतंत्र दल, पंचरंगे झंडे वाले भगवान श्री सत्य साईं सेवा आर्गेनाइजेशन, कांग्रेस (इ) आदि के कैंप लगे हुए हैं।

लक्ष्मीनारायण मंदिर में यात्रियों की काफी भीड़ है। सामने दरिद्रनारायण पंक्ति बनाकर बैठे हुए हैं। कुछ लंबे सींगों वाली गाएं, कौड़ियों का झूमर पहने दो नादिया, कंधायुक्त टांगवाली एक गाय। सामने स्फटिक शिला से नव-निर्मित छेवी पातसाही का भव्य गुरुद्वारा। जहां से गुरुवाणी का कीर्तन सुनाई दे रहा है।

यात्रियों के मनोरंजन के लिए सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय द्वारा आयोजित लाईट एंड साउंड में 'रामचरितमानस' नाटक की सूचना। एक और सूचना—'किसी जेब-कतरे को किसी का रुपया मिला हो, तो पुलिस में आकर सूचना दे।' मेरे साथ चलनेवाले यात्री खिलखिलाकर हंसते हैं—'जेब-कतरों की सूचना पुलिसवालों को दें'—हा हा हा!

सन्निहित सरोवर से रेलवे स्टेशन तक और इधर बिरला मंदिर तक सड़क के दोनों ओर, लगभग दो हजार मेला-दुकानें। सब ओर जमा भीड़। भीड़ निरंतर बढ़ती जा रही है। यात्रियों के दल पंक्तिबद्ध चले आ रहे हैं। सिर पर गठरियां उठाए। पापों से मुक्ति, पुण्यों का अर्जन करने के लिए।

16 फरवरी को सूर्य-ग्रहण दिवस है। प्रातःकाल से ही आकाश साफ है। धूप खिली हुई है, हवा में ताज़गी और गर्मी। सरोवरों को जानेवाले सभी मार्गों पर यात्रियों का समूह उमड़ता हुआ आगे बढ़ रहा है। एक अंतहीन प्रवाह, जैसे कोई बाढ़ आ रही हो। कंधे से कंधा मलती भीड़। सरोवरों पर, सड़कों पर, घाटों पर, मैदानों में, जहां भी दृष्टि जाती है, यात्रियों की अपार भीड़ दिखाई पड़ती है। विशाल जनसमूह। लहराता जनसागर। गाड़ियों, बसों ट्रैक्टर-ट्रालियों, कारों, ठेलों से तथा पैदल बड़ी संख्या में सरोवर की ओर जाते यात्री; एक दिशा में, एक विश्वास लिए। श्रद्धा, भक्ति, विश्वास और आस्थाओं का मेला। अनास्था और अस्वीकृति के 'आधुनिक' युग में।

सूर्य-ग्रहण प्रारंभ होनेवाला है। ब्रह्मसरोवर एवं सन्निहित सरोवर पर स्नान करने के लिए लाखों की भीड़ जमा है। अकेले ब्रह्मसरोवर के विशाल घाटों पर एक समय में 5 लाख व्यक्ति स्नान कर सकते हैं। इसीलिए खचाखच भरे होने पर भी वहां कोई अव्यवस्था या आकुलता नहीं। कुछ लोग स्नान कर रहे हैं। कुछ सूर्य-ग्रहण की प्रतीक्षा में हैं। सूचना-प्रसारण-केंद्र से निरंतर सूचनाएं, चेतावनियां प्रसारित हो रही हैं। अढ़ाई बजे के निकट वातावरण में गहमा-गहमी-सी आने लगी है। एक हज़ार नागा साधुओं का एक विशाल जुलूस असंख्य भक्तजनों के साथ ब्रह्मसरोवर की ओर बढ़ रहा है।

2-37 पर ग्रहण प्रारंभ होने की सूचना मिलते ही लाखों लोग स्नानार्थ जल में उतर पड़े हैं। शंखों, घंटों, घड़ियालों की ध्वनि से वातावरण गूंज उठा है। धीरे-धीरे धूप मंद पड़ने लगी है और सरोवर के जल पर काली छाया उतरने लगी है। आधे से अधिक सूर्य को ग्रहण लग चुका है। स्थान-स्थान पर भजन-कीर्तन हो रहे हैं। कोई गीता का पाठ कर रहा है, कोई रामायण पढ़ रहा है। कोई ध्यान लगाए बैठा है, तो कोई मंत्र जाप कर रहा है। घाट पर दान मांगनेवालों का हुजूम है। 'ग्रहण का दान करो, सोने-चांदी का दान करो'—अलग-अलग तरह के पात्र लिए घाट पर घूम रहे हैं। कुछ वस्त्र बिछाए बैठे है। मेरा अनुमान है कि लगभग दस हज़ार भिखमंगे और दान लेनेवाले इस मेले में मौजूद हैं।

लोगों को विश्वास है कि सूर्य-ग्रहण के अवसर पर सभी देवता और तीर्थ ब्रह्मसरोवर में स्नान करने आते हैं। इस सरोवर का स्नान विश्व के सभी तीर्थों के स्नान का फलदाता है— और आज का दान महा दान है। सूर्य-ग्रहण का पर्व महादान का पर्व है। पहले समय में इस अवसर पर राजा लोग अपनी रानियों तक को दान में दे देते थे और फिर सोने-चांदी से तोलकर उन्हें वापिस ले लेते थे। कहते हैं कि एक बार एक पंडे की नीयत बिगड़ गई। उसने रानी को लौटाने से इंकार कर दिया और तभी से यह प्रथा समाप्त हो गई। लेकिन, अब कहां रानियां और कहां सोना-चांदी। लोग दो-तीन पैसे का सिक्का देकर महान पुण्य कमा लेना चाहते हैं। मैं सोचता हूं कि दूर-दूर से आनेवाले ये भिक्षु, ये दान लेनेवाले—दो-दो, तीन-तीन पैसों के सिक्के इकट्ठे करके कितना धन जमा कर सकेंगे और उससे कितने दिन उनका निर्वाह हो सकेगा? ये कब से इस महान दान-पर्व की प्रतीक्षा में आंखें बिछाए बैठे थे?

भक्त-जन दान-स्नान, जप-पूजा, भजन-कीर्तन करके सूर्य देवता की संकट मुक्ति और अपनी मनोकामनाओं की पूर्ति की प्रार्थना कर रहे हैं। उनका विश्वास है कि जो सूर्य भगवान उनका जीवन-दाता है, वही आज संकट में है। राहु ने उसे ग्रस लिया है। वे अपने सुकृत्यों, पुण्य-कर्मों एवं जप-दान से उसका संकट-मोचन करने में तत्पर हैं।

और लीजिए, सूर्य का संकट-मोचन हो रहा है। धीरे-धीरे ग्रहण के बादल छंटने लगे हैं। जल पर से काली छाया सिमटने लगी है और धूप गरमाने लगी है। सूचना-प्रसारण-केंद्र से बार-बार सूर्य-ग्रहण को न देखने की चेतावनी दी जा रही है और आकाशवाणी, रोहतक-केंद्र द्वारा सूर्यग्रहण का आंखों-देखा हाल प्रसारित हो रहा है। 4-49 पर सूर्य के स्वच्छ होने की सूचना मिलते ही पुनः लाखों श्रद्धालु एक साथ जल-स्नान के लिए सरोवरों में प्रवेश कर रहें हैं। वे शुद्ध होकर अपने घरों को जाएंगे। पापों से मुक्त होकर, पुण्यों का संचय कर। लो, सुकृत्यों से समन्वित, अपनी मनोकामनाओं की पूर्ति से आश्वस्त, उल्लास और आनंद से भरे, वे अपने-अपने घरों को लौट भी चले हैं। सभी मार्गों से थानेसर नगर की ओर, विश्वविद्यालय-परिसर की ओर, बस-स्टैंड की ओर, रेलवे-स्टेशन की ओर।

संध्या घिरने लगी है और पक्षी अपने-अपने नीड़ों की ओर लौट रहे हैं।

(1980)

रामपुर बुशहर का लवी मेला

संसार के प्रत्येक देश में अत्यंत प्राचीन काल से अनेक प्रकार के उत्सव मनाए जाते रहे हैं तथा इन उत्सवों पर बड़े-बड़े मेले लगते हैं। इन मेलों का धार्मिक तथा व्यापारिक कई प्रकार का महत्त्व होता है। कुछ मेले केवल मनोरंजन के लिए भी होते हैं। चीन, रूस, तथा भारत जैसे कृषि प्रधान देशों में किसान जब अपने परिश्रम से उत्पन्न की हुई खेती को काटकर निवृत्त हो जाता है, और उसके घर में वर्ष के खाने का अन्न इकट्ठा हो जाता है, तब वह अनेक प्रकार के मनोरंजन के साधन जुटाता है। मेले लगते हैं, उनमें वह गाता, नृत्य करता, तथा मोद मनाता है। अपने इष्टदेव की पूजा अर्चना करता है भेंट चढ़ाता है तथा उसकी प्रसन्नतार्थ अनेक उत्सव मनाता है। इस प्रकार के अनेक मेले भारत के प्रत्येक भाग में अत्यंत प्राचीन काल से लगते रहे हैं।

भारत के पूर्वोत्तरी भाग, जिसे हिमाचल प्रदेश कहा जाता है, वहां भी ऐसे अनेक मेले लगते हैं। परंतु, इन सबमें महत्त्वपूर्ण तथा बड़ा मेला लवी का मेला है। यह मेला लगभग 300 वर्ष से शिमला से 80 मील की दूरी पर रामपुर बुशहर में प्रतिवर्ष फसल के कट जाने के बाद लगभग नवंबर के महीने में लगता है। रामपुर बुशहर पूर्व रामपुर रियासत का, जो हिमाचल की प्रमुख रियासतों में से थी, उसका केंद्रीय स्थान था, जहां राजा के मनोरम वासगृह के अतिरिक्त अनेक सुंदर राजकीय भवन हैं। रामपुर लगभग 3200 फीट की ऊंचाई पर है तथा दोनों ओर से ऊंची पहाड़ियों से घिरा हुआ है। उसके पश्चिमी तट पर सतलुज तीव्र गति से पत्थरों, चट्टानों से पछाड़ खाता, नृत्य करता प्रवाहित हो रहा है। पहाड़ियों से घिरा होने के कारण यहां न अधिक गर्मी होती है और न अधिक सर्दी। व्यापारिक दृष्टि से भी यह स्थान उस प्रदेश का प्रधान केंद्र है! शिमला से ऊपर 200 मील तक, चीनी तहसील

जो तिब्बत की सीमा से मिलती है, वहां तक के प्रदेश का व्यापारिक केंद्र रामपुर ही है। लवी का मेला भी एक व्यापारिक मेला है। इस मेले का नाम लवी क्यों पड़ा इसके संबंध में दो प्रमुख विचार हैं। कुछ का विचार है कि 'लवी' 'ल' शब्द से बना है जिसका अर्थ 'भेड़ की ऊन' है। दूसरा विचार यह है कि 'लवी' 'लोई' शब्द का अपभ्रंश है। इस मेले में लोई (ऊनी चादर-पट्टू) की बिकरी बहुत अधिक मात्रा में होती है, इसलिए इस मेले का नाम 'लोई' 'लवी' पड़ा। कुछ भी हो, इस मेले का अधिक महत्त्व ऊन के व्यापार के कारण ही है। ऊपर के लोग अपने वर्ष-भर का उत्पादन, जिसमें अधिकतर ऊन तथा ऊनी माल होता है, लाकर बेचते हैं तथा वर्ष-भर की आवश्यकता का खाद्य तथा अन्य उपयोगी वस्तुएं खरीदकर ले जाते हैं। इस मेले में तिब्बत के निकटवर्ती भारतीय प्रदेश, तिब्बत तथा कुल्लू आदि से हज़ारों मन ऊन, सैंकड़ों मन पशम तथा न्योज़ा व अखरोट आकर बिकता है। भारत के ऊनी उद्योग को कच्चा माल देने की यह एक मंडी है। रामपुर के न्योज़ा व्यापारी भी इस मेले से ही अपने वर्ष-भर की रोटी निकाल लेते हैं।

यह मेला आरंभ में एक स्थानीय मेला था, जिसमें आस-पास के लोग ही आते थे। परंतु अब इस मेले का एक अंतर्राष्ट्रीय महत्त्व भी है। चीनी तिब्बत सड़क जो शिमला तथा तिब्बत को मिलाती है, रामपुर से होकर ही आती है। इस सड़क के मार्ग से तिब्बत की सैंकड़ों मन ऊन इस मेले में आकर बिकती है।

इस व्यापारिक महत्त्व के साथ-साथ दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि यह मेला एक सांस्कृतिक सम्मेलन या मेला भी है। हिमाचल में अनेक प्रकार की मान्यताएं हैं। तिब्बत से मिलती चीनी तहसील है जिसे कन्नौर प्रदेश कहा जाता है। उन लोगों का रहन-सहन, वेष-भूषा, आचार-विचार, परंपराएं, रीति-रिवाज अपना अलग महत्त्व रखते हैं; जो बहुत कुछ तिब्बती लोगों से मिलते हैं। रामपुर तथा उसके निकटवर्ती लोगों का अपना अलग रहन-सहन, वेष-भूषा है तथा थ्योग, फागू आदि के लागों का उनसे भी भिन्न है। इसी प्रकार कुल्लू के लोगों (गद्दी) की भी अपनी सभ्यता है। इस प्रकार इस मेले में अनेक भागों से, अनेक विचारों, परंपराओं, रूढ़ियों के माननेवाले लोग एकत्रित होते हैं। इधर मैदान के भारतीय सभ्यता में पले तथा पश्चिमी सभ्यता से प्रभावित लोग भी व्यापार के लिए, अथवा राजकीय कार्यवश, या केवल मेला

देखने वहां जाते हैं।

उन सभी प्रदेशों से आए लोगों की बोलचाल की भाषा भी अपनी है और आपस में वे उसे ही व्यवहार में लाते हैं। किंतु, हिंदी को सभी समझते तथा बोलते हैं और व्यापारिक कार्य में अधिक प्रयोग हिंदी का ही होता है,

इस प्रकार ये लोग इन कुछ दिनों के सम्मेलन में एक साथ रहकर, एक-दूसरे के रहन-सहन, रीति-रिवाज, खान-पान, गान-नृत्य को देखते हैं। तथा उससे प्रभावित भी होते हैं और एक-दूसरे के अधिक निकट आते हैं। यही कारण है कि पहाड़ी अब मैदानी लोगों को अजनबी नहीं समझते और उनके रहन-सहन तथा विचारों पर भी अब इधर के लोगों का प्रभाव दिखाई पड़ता है और उनमें से कुछ ऐसे संस्कार जो सभी सभ्य लोगों की आलोचना के विषय होते थे, समाप्त प्रायः हैं। तिब्बत के समीपवर्ती लागों को भारतीय सभ्यता तथा राष्ट्रीय शृंखला में बांधे रखने के कार्य में यह मेला एक महत्त्वपूर्ण कार्य कर रहा है।

इस मेले में धार्मिक, राजनैतिक तथा सामाजिक कार्यक्रम भी खूब चलते हैं। कुछ पहाड़ी कभी-कभी अपने देवता की मूर्ति को यहां ले आते है। यह मूर्ति स्वर्ण तथा रजत की बनी होती है। एक डोली-सी बनाकर बांसों पर चार आदमी उसे कंधों पर उठाकर लाते हैं। उसके आगे कुछ लोग नंगी तलवारें और भालें लेकर, कुछ ढोलक, नगारे, शहनाइयां लेकर तथा कुछ ऐसे ही नृत्य करते व गाते चलते हैं। मूर्ति को उठानेवाले लोग भी नृत्य करते तथा देवता को नृत्य कराते (झुलाते) हैं। अपने नृत्य व वंदना में वे इतने लीन हो जाते हैं कि स्वर ताल तथा नृत्य की गति एक साथ होकर मादक वातावरण का निर्माण कर देती है। ये लोग अत्यंत धर्मभीरु हैं और देवता में इन्हें असीम विश्वास व श्रद्धा है, जिसकी प्रसन्नता के लिए तथा कृपा पाने के लिए वर्ष में कई बार मेले करते हैं और दूध, घी, शराब तथा बकरे की बलि आदि से उसकी पूजा करते हैं।

दिन-भर के लेन-देन के पश्चात्त; खान-पान से निवृत्त होकर उनके आमोद, प्रमोद, मनोरंजन का कार्यक्रम चलता है और वे लोग इकट्ठे होकर नृत्य तथा गायन करते हैं। इस अवसर पर कन्नौरों द्वारा होनेवाले लोक सामुदायिक नृत्य तथा लोक-गीत अत्यंत मनोरंजक होते हैं। इनमें स्त्री तथा पुरुष, बालक तथा बूढ़े सभी समान रूप से तथा बड़े उत्साह के साथ भाग

लेते हैं। किसी प्रकार का कोई भेद यहां नहीं समझा जाता। स्त्री-पुरुष अपने से तीसरे का हाथ पकड़कर अर्ध मंडल-सा बनाकर नृत्य करते हैं। पुरुष ढोलक, नगारे आदि वाद्यों को बजाते हैं, और स्त्रियां गाती हैं। पुरुष भी कभी-कभी उनका साथ देते हैं। इनकी मधुर स्वरलहरी एक बार तो इतनी सरसता उत्पन्न कर देती है कि हृदय पुलकित हो उठता है और संगीत व गायन की शक्ति का परिचय मिलता है! इन लोक गीतों के भाव भी बहुत गहरे होते हैं। इस गीत में देखिए अपरिचित लोगों के प्रति किस प्रकार के भाव प्रकट किए गए हैं।

दम्मबई यार जिम्मूक ईलीम्या
ग्योनिगङ छरवा सोलोबाई।
दम्मबई यार जम्मू न्युमची इंचू मरोल ग्योशो;
दिल ग्यो च मरोल ग्यो शो।
इंचू मरोल ग्योशो मन राज्यू मादाक।

दम्मबई (अच्छी संगति) यार (मित्र) जिम्मूक (इकट्ठे होना) ईलीम्या (एक बार) ग्योनिङ (वर्षा) छरबा (मुसलाधार) सोलोबाई (सदा) न्यूमची (बाद में) इंचू (एक बार) मरोल (गीत) ग्योशो (चाहिए) राज्यू (ईश्वर) मादाक (प्रसन्न हो)

भावार्थः—मुसलाधार वर्षा तो सदा होती रहती है परंतु मित्र लोग तो कभी-कभी ही एकत्रित होते हैं। अब जबकि हमारे अपरिचित मित्र एक बार इकट्ठे हुए है हमें एक मन को लगनेवाला गीत गाना चाहिए। वह गीत इतना मनोहर हो कि इसे सुनकर भगवान भी प्रसन्न हो जाएं।

इस प्रकार यह मेला व्यापारिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनैतिक तथा सामाजिक दृष्टि से हिमाचल का एक महत्त्वपूर्ण मेला है। इस प्रदेश के पहाड़ी लोगों के जीवन का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। वर्ष में एक बार यह उनमें एक नया जीवन और नई चेतना डाल देता है।

(1957)

छात्रों से बातचीत

आपने अपने जीवन के कुछ वासंती वर्ष इस महाविद्यालय में व्यतीत करके जो शिक्षा ग्रहण की है, मुझे विश्वास है कि जब आप जीवन की तपती दोपहरी में अनेक समस्याओं से जूझ रहे होंगे तो इन दिनों की सुगंध और शीतल पवन आपके लिए सुखकर और मंगलकारी सिद्ध होगी।

अपने महाविद्यालय के शिक्षणकाल में आपने जो शिक्षा प्राप्त की है, वह शिक्षा का एक आंशिक पक्ष ही है, जिसके माध्यम से आपने विज्ञान, मानविकी अथवा साहित्य आदि विषयों का कुछ उच्चस्तरीय ज्ञान मात्र प्राप्त किया है। निश्चय ही, शिक्षा का एक उद्देश्य 'ज्ञान' प्रदान करना है और ज्ञान की महत्ता कम नहीं है। 'गीता' में कहा गया है—"न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते"। अर्थात् 'ज्ञान से अधिक पवित्र और कुछ भी नहीं है'। किंतु, ज्ञान के संवर्धन के साथ-साथ छात्रों को अपनी आजीविका कमाने के योग्य बनाना भी शिक्षा का एक अपरिहार्य प्रयोजन है। यद्यपि यह विश्वासपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि आज जो शिक्षा हमारे विद्यालयों और विश्वविद्यालयों में दी जा रही है, वह पूरी तरह हमें इस योग्य बना पा रही है। भारत को स्वतंत्र हुए लगभग 33 वर्ष हो चुके हैं और सभी राजनैतिक नेता और शिक्षाविद् शिक्षा नीति एवं शिक्षा-पद्धति में परिवर्तन की आवश्यकता पर निरंतर बल देते रहे हैं। लेकिन, उसमें आवश्यकता अनुरूप परिवर्तन हो पाया है, यह कहना कठिन है।

शिक्षा अपने व्यापक अर्थ में एक ऐसी प्रक्रिया है जो अंशतः हमारे विद्यालय, विश्वविद्यालय और अंशतः हमारे संपूर्ण सामाजिक संबंधों के माध्यम से जीवनपर्यंत चलती रहती है। शिक्षा कोई जड़ अथवा गतिहीन वस्तु नहीं है। वरन् यह गतिशील एवं निरंतर परिवर्तनशील प्रक्रिया है। ठीक वैसे ही जैसे हमारा जीवन गतिशील, परिवर्तनशील एवं विकसनशील है। प्रसिद्ध

अमेरिकन शिक्षाशास्त्री जान डिवी (Dewey) के अनुसार 'शिक्षा अनुभवों की एक ऐसी संचरणशील पुनर्संरचना की प्रक्रिया है जो कभी समाप्त नहीं होती।' शिक्षा का मुख्य उद्देश्य मनुष्य को जीने के योग्य बनाना है और इस रूप में जीवन और शिक्षा ये दोनों अविभाज्य हैं और निरंतर साथ-साथ चलते हैं।

महात्मा गांधी ने कहा था 'शिक्षा से मेरा अभिप्राय बालक अथवा मनुष्य की शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक शक्तियों की सर्वोत्तम उपलब्धियों से है।' दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि बालक की जिज्ञासा-वृत्ति, कल्पना-शक्ति एवं सृजनात्मक-प्रतिभा को प्रेरित एवं प्रोत्साहित कर उनके व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करना शिक्षा का लक्ष्य है। प्रो. ड्रेवर (Drever) का मत है कि 'शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसके द्वारा युवकों के ज्ञान, चरित्र एवं आचरण का निर्माण होता है।'

वस्तुतः, शिक्षा सामाजिक परिवेशगत सचेतन प्रक्रिया है। अर्थात् सामाजिक परिवेश से भी शिक्षा का अन्योन्याश्रित संबंध है। सामाजिक परिवेश शिक्षा का अभिन्न अंग है और शिक्षा सामाजिक परिवेश के परिवर्तन अथवा परिष्कार का सशक्त माध्यम है। अतः, यह सत्य है कि जहां हम अपने सामाजिक परिवेश से जुड़े हुए उसके अच्छे या बुरे प्रभाव से मुक्त नहीं रह सकते, वहां हमें स्वयं भी अपने सामाजिक उत्तरदायित्व को निभाते हुए अपने परिवेश को और अधिक स्वस्थ, परिष्कृत एवं समृद्ध करने का प्रयास करते रहना चाहिए। हमारे परिवेश में विकृतियां और विसंगतियां कम नहीं हैं। ये तो सारे मानवीय जीवन में व्याप्त हैं, भीतर भी बाहर भी। यहां कटुता भी है और विष भी। लेकिन, हमें शिव की भांति विषपान कर अमृत की गंगा बहानी है। आप सब 'शिव' बनें, यही मेरी कामना है और यही प्रभु से प्रार्थना है। शिक्षा का अंतिम लक्ष्य मनुष्य के लिए सुख और आनंद की उपलब्धि है। वह साधन है साध्य नहीं। अस्तु, शिक्षा ऐसी ही होनी चाहिए जो ऐसे सभी अवसर और सुविधाएं प्रदान कर सके, जिनसे हम इस लक्ष्य को प्राप्त कर सकें, जो मनुष्य के व्यक्तित्व को सामाजिक परिवेश के आदर्शों के अनुरूप ढालती हुई सामाजिक प्रासंगिकता के अनुरूप उसके व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास कर सके। वह शिक्षार्थी को इस योग्य भी बनाए कि वह परंपरागत स्वस्थ सांस्कृतिक मूल्यों को आत्मसात कर सके और नवीन सार्थक सांस्कृतिक मूल्यों की संरचना भी कर सके।

आज हमारे समाज में सांस्कृतिक मूल्यों का विघटन हो रहा है। हमने भौतिक रूप में जितनी उन्नति की है, नैतिक रूप में हम शायद काफी गिरे भी हैं। जितने ऊंचे-ऊंचे शिखरों वाली अट्टालिकाएं बनी हैं लगभग उसी अनुपात से व्यक्ति रूप में मनुष्य स्वार्थ और द्वेष के गर्त में गिरता गया है। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि मात्र ऊंचे-ऊंचे बांधों से राष्ट्र का निर्माण उतना नहीं होता, जितना कि ऊंचे चरित्र और उचित शिक्षा से। आज हमारा युवा वर्ग दिशाहीन है। वह अपने भविष्य के प्रति आशंकित और संत्रस्त है। श्रद्धा और विश्वास विहीन होकर वह अनास्था और अस्वीकृति की चेतना को ग्रहण कर रहा है। वह 'हर उगते हुए सूर्य को गाली देने' में गर्व अनुभव करता है। निरर्थकता का बोध उसे दीमक की तरह भीतर-ही-भीतर खा रहा है। वह महसूस करता है जैसे उसका अस्तित्व व्यर्थ और निरर्थक है। उसकी इस अनुभूति को एक कवि ने इस प्रकार व्यक्त किया है:—

क्षुब्ध पिता के लिए / नहीं जन्मे होते तो अच्छा था / बहनों को भूल चुका कब का राखी भेजना / भाई समझते हैं / हम असाध्य रोगी हैं / जारी है अब भी / मां का रोना पीटना / मित्रों ने मान लिया है जाने कब का / हम मरे घोड़े हैं / शासन की दृष्टि में नालायक हैं हम / देश की सुरसा जनसंख्या में / कीड़े मकोड़े हैं।

इस प्रकार की चेतना का शिकार होकर वह कभी हड़तालें और तोड़-फोड़ करता है, कभी 'drugs' का सहारा लेता है, तो कभी हिप्पी-संस्कृति का अनुकरण करता है। लेकिन, यह तो स्वस्थ और मंगलकारी दृष्टि नहीं है। न आपके अपने लिए, न समाज के लिए और न मानव-संस्कृति के लिए। 'सूर्य को गाली देने' की बजाय यदि हम यह सोच सकते कि—'चांदनी की रात है तो क्या करूं, जिंदगी में चांदनी कैसे भरूं' तो कितना सार्थक होता हमारा जीवन। मुझे प्रसिद्ध चीनी दार्शनिक कनफ्यूसियस की एक उक्ति याद आ रही है। उसने कहा था:—

"It is better to light a small candle than to curse the darkness"

(अंधकार को गाली देने की अपेक्षा एक नन्हा-सा दीपक जला देना कहीं श्रेयस्कर है।)

मित्रो! यह संसार इतना सीधा और सरल नहीं है, जितना आप संभवतः समझते हैं और शायद जितना कि आप स्वयं सहज और निश्छल हैं। यह

संसार बड़ा ही निर्मम है। यह नई-नई विधियों से आपका शोषण करना चाहेगा। लेकिन, यदि आपमें सही मूल्यों की पहचान है, विवेक है और आप अपने आचरण के प्रति सजग हैं तो आप न केवल अपने जीवन को सार्थक बना पाएंगे, अपने परिवेश में भी परिष्कार ला सकेंगे। उपनिषद् वाक्य है 'आत्मानं विद्धि' Know Thyself 'स्वयं को जानो'—यह महान मंत्र हैं। आध्यात्मिक स्तर पर ही नहीं, अपने व्यावहारिक जीवन में भी यह मंत्र आपका मार्गदर्शक बन सकता है।

आप निरंतर अपने शब्दों, कृत्यों, विचारों, चरित्र और आचरण आदि का आत्म निरीक्षण करते जाएं। इससे आप निरर्थकता-बोध से मुक्त होकर सार्थकता का अनुभव करेंगे। मूल्यहीनता से मूल्य-चेतना की ओर तथा निराशा से आशा की ओर प्रस्थान करेंगे। आपको कठोर जीवन-लेवा स्थितियों में जीना है। लेकिन, आपकी जिजीविषा शक्ति यदि 'ईशोपनिषद्' के 'ओम् ईशा वास्यमिदं सर्व यत् किञ्च जगत्यां जगत्। तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।' अर्थात् जगत में जो कुछ स्थावर-जंगम संसार है, वह सब ईश्वर के द्वारा आच्छादनीय है। उसके त्याग भाव से तू अपना पालन कर, किसी के धन की ईच्छा न कर/—दर्शन से आलोकित होगी तो आप नरक में भी स्वर्ग की रचना कर सकेंगे।

'बृहदारण्यक उपनिषद्' में कहा गया है कि दैवीवाग् मेघगर्जन के रूप में सदा पुकारती है—'दाम्यत' (इंद्रियों को वश में रखो) 'दत्त' (दान दो) 'दयध्वम् (दया करो)। आज भी हमारे लिए ये मंत्र आदर्श बन सकते हैं।

मित्रों! अब आपका संघर्ष का जीवन प्रारंभ हो रहा है। निश्चय ही, परिवेशगत विसंगतियां और असुरक्षा की भावना आपके भीतर असंतोष और आक्रोश उत्पन्न कर सकती है। संघर्ष और आक्रोश सर्वथा त्याज्य भी नहीं है। संघर्ष तो जीवन के विकास का मर्म है। महात्मा गांधी ने कहा था—'जो संघर्ष करता है उसका कभी नाश नहीं होता' ('He who strives never perishes') वैदिक प्रार्थना है— मन्यूरसि मन्युर्मयि धेहि (मुझ में क्रोध हो कि मैं न्याय के लिए लड़ सकूं)। लेकिन, यह आक्रोश और संघर्ष तभी सार्थक हो सकता है, जब संघर्ष विवेकपूर्ण और आक्रोश सात्विक होगा।

मैं उपदेश देने के लिए आपसे यह सब नहीं कह रहा हूं। उपदेश देने का न तो मैं अधिकारी हूं और न ही आज के युवकों को उपदेश देना बुद्धिमत्ता

है। आप स्वयं अपने भाग्य के निर्माता और भविष्य के निर्णायक हैं। मनुष्य का अपना आचरण ही उसके लिए सबसे बड़ा उपदेशक होता है।

अंत में 'तैतिरीय उपनिषद्' की इन पंक्तियों के साथ मैं अपनी बात समाप्त करता हूं और आपके मधुमय भविष्य के लिए अनंत कामनाएं करता हूं।

'स्वाध्यायान्मा प्रमदः' / 'स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्' / 'यान्यनवद्यानि कर्माणि, तानि सेवितव्यानि नो इतराणि' — अपने अध्ययन में प्रमाद न करो / स्वाध्याय तथा प्रवचन में प्रमाद न करो / अच्छे कर्मों का अनुसरण करो / बुरों का नहीं।

(दीक्षांत अभिभाषण)

(1981)

सौंदर्यस्थली—छछरौली

अंबाला जिले में जगाधरी से छः मील उत्तर की ओर हिमालय की तलहटी में घनी अमराइयों से ढकी अलकापुरी-सी सुंदर यह छोटी-सी नगरी मेरी जन्मभूमि है। इसके चरणों का प्रक्षालन करती हुई, स्वर्ण उगलनेवाली सोम नदी इठलाती, बलखाती क्षीण रेखा-सी प्रवाहित हो रही है। वर्षा ऋतु में जिसकी उत्ताल तरंगे मन-प्राणों को उद्वेलित कर देती हैं। उत्तर में प्रभात की स्वर्णिम आभा से आलोकित नगाधिराज हिमालय की ओर वन्य-पशुओं से संकुल, दूर तक फैली रम्य वनस्थली है, जिसके सरोवरों, तड़ागों के तिरमिरेपन से ऐसा प्रतीत होता है कि उसके नीचे तेल का कोई अक्षय भंडार है। पश्चिम में हरे-भरे खेतों और रसालों के घने बागान की बहार बिखरी हुई है। यहां वसंत ऋतु में जब मदमस्त कोकिलों की करुण कूक सुनाई पड़ती है, तो प्रणय स्मृतियां हृदय को कुरेद-कुरेद देती हैं। दक्षिण में लंबे-लंबे, सीधे साफ, सपाट यूकलिपटिस के वृक्ष यहां के निवासियों के सीधे-सादे और निराडंबर जीवन के प्रतीक बनकर मुख्य मार्ग से आनेवाले अतिथियों का स्वागत करते प्रतीत होते हैं। विज्ञान युग की चकाचौंध से दूर, भीड़-भड़ाके की भाग-दौड़, मशीनों की गड़गड़ाहट और रेलों, मोटरों की खटखटाहट से मुक्त लगभग 4000 प्राणियों के श्वासों से स्पंदित साफ, सुथरी, प्रशांत, प्रसन्न, निश्चल, निस्तंभ, अपने में ही लीन यह एक विचित्र नगरी है। वैसे सिनेमाघर, नाचघर, कॉफी हाउस या नाइट क्लब आदि को छोड़कर आधुनिक युग की अन्य सभी सामान्य आवश्यकताओं की यह पूर्ति करती है।

सन् 1948 तक यह कलसिया स्टेट की राजधानी थी। शिकार, साहित्य और संगीत प्रेमी स्वर्गीय राजा रविशेरसिंह बहादुर के राज्यकाल को यहां की जनता 'सतजुगी' राज्य कहती थी। उन दिनों इसकी अनोखी शान थी। निराली शोभा थी। रविशेरसिंह को सिंह के सामने खड़े होकर शिकार करने का बड़ा

शौक था और ऐसे शिकारों से विभूषित उनका महल एक अजायबघर से कम नहीं था। निकट के वन को 'सिंह विहीन' रखने का उनका व्रत कभी नहीं टूटने पाया। अपने महल के एक कक्ष में अपने शिकार के पास खड़े होकर वे उसे मारे जाने का सारा हाल बड़े स्नेह और उत्साह से स्कूल के उन बच्चों को सुनाते थे, जिनमें कभी-कभी मैं भी शामिल होता था। शास्त्रीय संगीत का रसास्वादन कराने के लिए पं. रामचंद्र सदा उनकी सेवा में रहते थे और जब अपने जन्म दिवस पर सिक्ख होते हुए भी वे नगर के सबसे बड़े मंदिर में जाते थे, तो वहां एक बड़े संगीत समारोह का आयोजन किया जाता था। राजदरबार में स्वर्गीय हकीम पूर्णानंद की हिंदी कविता सुनकर जो भूरि-भूरि प्रशंसा वे किया करते थे, यह भी मेरे स्मृति पटल पर अंकित है। वह खुद भी एक अच्छे कवि थे। इस उदार, साहसी, धर्म सहिष्णु, जनप्रिय, प्रजाप्रेमी राजा के वीर देशभक्त पुत्र राजा करण शेरसिंह ने वायुसेना में भर्ती होकर एक विमान दुर्घटना में देश की सेवा में अपने प्राणों का उत्सर्ग किया। उसके इस महान् बलिदान से छछरौली की जनता अपने को गौरवांवित समझती है और उनके प्रति श्रद्धानत है। रियासती राज्यकालीन वह शोभा और वैभव अब अतीत की चीज़ है। अब उस श्री से हीन, उपेक्षित स्वकीया-सी, लुटी-सी चिंतालीन यह नगरी अपने जीवन की घड़ियां गिन रही है। जैसे उसमें कोई स्वर नहीं, कोई संगीत नहीं। वैसे प्रजा मंडल के स्वतंत्रता आंदोलन द्वारा जो राजनैतिक चेतना यहां जागृत हुई थी, स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् वह उत्तरोत्तर विकसित होती रही है, और इस समय यहां लगभग सभी राजनैतिक दलों की शाखाएं हैं। राजनैतिक दृष्टि से लोग सचेत और जागरूक हैं, फिर भी उन्हें सामूहिक हित की अपेक्षा व्यक्तिगत स्वार्थ का ध्यान अधिक रहता है। कुछ रूढ़िवादी भी हैं, इसलिए सरकार द्वारा सब प्रकार की सहायता दिए जाने के आश्वासन पर भी औद्योगिक तथा शैक्षणिक दिशा में यहां कोई प्रगति नहीं हो सकी।

जहां तक लोगों के सांस्कृतिक जीवन का संबंध है, उनकी अपनी परंपराएं और रूढ़ियां हैं। लोगों में अंधविश्वास और पुराणपंथी आचरण की भी कमी नहीं है। मुझे वे दिन याद हैं जब झाड़-फूंक से पागलपन का इलाज करवाया जाता था, जंत्र-तंत्र से तैया-ताप भगाया जाता था, हीर-रांझे के प्रणय गीत सुनाकर पशुओं को रोग-मुक्त किया जाता था, श्मशान में अर्द्धरात्रि के

समय शव-साधना द्वारा सिद्धि प्राप्त की जाती थी, पुरुष की रूह में स्त्री की रूह आ जाने के कारण 'ब्रह्म' बन जाने की घोषणा की जाती थी, भूतों-प्रेतों में विश्वास रखा जाता था और चुड़ैलों के नाम से डराकर बच्चों को दूध पिलाया जाता था। परंतु, आधुनिक युग की बौद्धिकता के संस्पर्श से अब ये सब अंधविश्वास मिटते जा रहे हैं और ऐसी बातों को मनोरंजक और हास्यपूर्ण समझा जाता है।

यह स्थान विचित्र सांस्कृतिक क्षेत्रों की सीमाओं से घिरा हुआ है। एक ओर पीरों, फकीरों की पुण्य भूमि सढौरा है, दूसरी ओर पुराणों का प्रसिद्ध पवित्र तीर्थ स्थान कपाल मोचन है, तीसरी ओर गुरु गोविंद सिंह की क्रीड़ाभूमि पाऊंटा साहब है। चौथी ओर यमुना तट पर बसी मुनियों, ऋषियों की तपोभूमि बूरिया है। यह वही स्थान है जहां से होकर बंदा बैरागी पंजाब में प्रविष्ट हुआ था और जहां विनोद-विशारद बीरबल ने जन्म लिया था। 'चौधर चकडैत बूर्डीये की' यह कहावत अभी भी बीरबल की प्रशस्ति के रूप में वहां प्रचलित है। हिंदुओं, मुसलमानों और सिक्खों के इन पावन तीर्थों की भूमि में रहने के कारण यहां की जनता धर्म-सहिष्णु, उदार और धर्मभीरू बन गई है। अभी भी हिंदू पीर, फकीरों की मढ़ियों पर मनौतें मनाते हैं, दीये जलाते हैं, गूंगे पीर की श्रद्धाभाव से पूजा करते हैं, गुरुद्वारों में जाकर गुरुवाणी का अमृतपान करते हैं, गुरु पर्वों में शामिल होते हैं, और सिक्ख दीवाली और होली खूब उत्साह से मनाते हैं। नगर के चारों ओर मंदिर-शिवालय तथा एक गुरुद्वारा है और बीच में कई मस्जिदें हैं।

यहां का लोक मानस लोक गीतों और लोक कथाओं के रूप में भी मुखरित हुआ है। विभिन्न संस्कारों पर अनेक लोक गीत गाए जातें हैं और अनेक व्रतों, उपवासों, पर्वों पर भी लोक गीतों तथा लोक कथाओं में जन-जीवन की आशा-आकांक्षा, निराशा, मान्यताएं, विश्वास संवेदनाएं प्रकट हुई हैं। इनमें उनकी संस्कृति की भी सरल और भावपूर्ण अभिव्यक्ति हुई है तथा अनेक पौराणिक अथवा ऐतिहासिक घटनाओं को भी उनमें अनुस्यूत किया गया है। गौतम पत्नी अहिल्या को चंद्रमा द्वारा दूषित किए जाने की पौराणिक कथा को देखिए कितने सजीव रूप से चित्रित किया गया हैः—

गौतम नार सिला कर डारी,
मुर्गा बांग दगे की दे ग्या, बांग दगे....

गौतम ऋषि जी के न्हाने की त्यारी
गौतम ऋषि जी ने जब न्हान संजोया
वोली यमुना माई,
कौन रे पापी आन जगाई, मैं तो सोऊं
थी नग्न उघारी।
क्या री माता भूल गई हो भूलत बात
बिसारी,
मैं गौतम ऋषि भगत तुम्हारा।
तूं तो रे भोले भूल गया है भूलत बात
बिसारी,
तेरे तो रे भोले घर हो रही है जारी।
कुछ गौतम ऋषि न्हाये कुछ न्हान न पाये,
कांधे धोती डारी,
जब गौतम ऋषि ड्योढ़ी आये, ड्योढ़ी
चंद्रमा पाये,
दे मृगछाला जा उन मस्तक मारी।

यहां गौतम ऋषि और यमुना का वार्तालाप तो रोचक है ही परंतु यमुना से यह जानकर कि उसके घर में जारी हो रही है, गौतम की जो प्रतिक्रिया हुई है वह बहुत ही मनोवैज्ञानिक है। वह क्षुब्ध होकर कंधे पर धोती डालकर तीव्रगति से घर की ओर दौड़ता है, और जब ड्योढ़ी में चंद्रमा को देखता है तो क्रोधित होकर उसके मस्तक पर मृगछाला दे मारता है। कितना मार्मिक और सजीव चित्रण है। गीत में प्रवाह, संगीतात्मकता और तीव्रानुभूति है।

हीर-रांझे की प्रणय-गाथा पंजाब की अत्यंत लोकप्रिय और मार्मिक कथा है। हिंदी तथा पंजाबी के कवियों के अतिरिक्त लोक कवियों और लोक-कथाओं ने भी इसे अपनी अनुभूति का विषय बनाया है। हमारे लोक कवि ने भी इस कहानी का मार्मिक चित्रण किया है। एक उदाहरण देखिए:—

जाइयो हीरो मेरी रांजड़ा सिपाही रे
जिन्हें मेरी याणी भरमाई,
छाछा तो छाछा हीरो पीवे तेरे वीर ये,
मक्खन तो खावे हीरो रांजड़ा सिपाही रे।

जाइयो हीरो मेरी....।।
इकलौती का बेटा मइया मत दे गाली री,
जाइयो तेरे पांचों बेटे तू क्यों कोसे
रांजड़ा सिपाही री।

हीर की मां जब देखती है कि उसकी बेटी रांझे के पीछे पागल हो रही है और घर से मक्खन ले जा-ले जा कर उसे खिलाती है, तो उसे बड़ा दुख होता है। अपने क्षोभ को प्रकट करती हुई वह हीर से कहती है 'विनाश हो इस रांझे सिपाही का जिसने मेरी बेटी को भरमा रखा है, और घर का सारा मक्खन खा जाता है, जिससे हीर के भाइयों के हिस्से केवल छाछ-ही-छाछ आती है।' भला उसकी इस गाली को रांझे के प्रेम में रंगी हुई हीर कब सहन कर सकती थी। वह मुंह तोड़ उत्तर देती है, "अरी मां ऐसा क्यों कहती है, रांझा तो अपनी मां का इकलौता बेटा है, तू उसे क्यों कोसती है, तेरे तो पांच बेटे हैं, क्यों न तेरे पांचों पुत्र ही मर जाएं।' उसके प्रेमी की हित-भावना, प्रणयानुभूति तथा दृढ़ता को कितनी सजीवता से व्यंजित किया गया है। यहां के 'जोगी' सारंगी के स्वर में स्वर मिलाकर जब इस प्रणयकथा को सुनाकर माधुर्य की वर्षा करते हैं, तो गाएं, भैंसे भी उसे सुनकर मंत्रविमुग्ध ही नहीं होतीं, वरन् रोग मुक्त भी हो जाती हैं, ऐसा विश्वास किया जाता है।

कन्या की 'गोदभराई' की रस्म के अवसर पर गाए जाने वाले संस्कार संबंधी लोक गीतों का एक उदाहरण देखिए:–

आओ री राधे बैठो पिलंग पर तुम हमारे
मन की भाई राम,
हरा-हरा गोबर राधे अंगना लिपाऊं,
चंदन चौक पुराऊं राम,
नाई का लड़का री राधे बैगे पुराऊं नगर
बुलावा दुवाऊं राम।
आओ री राधे बैठो मंडप में हम तुम्हारी
गोद पुराऊं राम।
पांच रुपये री राधे सेर मिठाई नंदरानी
गोद भराई राम।

आप भी खाओ री राधे सखियों को
खिलाओ घर मत लेकर जाइयो राम
खेल मेल कर राधे घर धाम गई माता ने
गोद पुराई राम।
कहा ये राधे कहां री गई थी, किन्हें
थारी गोद पुराई राम।
खेलत खेलत माता नंद घर गई, नंदरानी
गोद भराई राम।
पांच रुपये री माता सेर मिठाई नंदरानी
गोद भराई राम,
आप भी खाओ राधे सखियों को खिलाओ
घर मत लेकर जाना राम,
अब तो गई थी राधे फिर मत जाना नंद
घर हुई है सगाई राम।
इसरे ब्रज राधे लोग बुरे हैं ठग-ठग करे
सगाई राम।

कृष्ण-राधा की सगाई का कितना भावपूर्ण और मनोरंजक चित्रण है। काव्य की अन्त्यानुप्रास छटा भी दर्शनीय है। वास्तव में इन लोक गीतों में जन-मानस की निश्छल, स्पष्ट, भावपूर्ण एवं सरल अभिव्यक्ति हुई है।

लोक कथाओं का भी जीवन के विविध रूपों में प्रसार है। राजकुमार और राजकुमारियों की कई-कई दिनों तक समाप्त न होनेवाली प्रेम-कहानियां, साहसपूर्ण, रोमांचक तथा विनोदपूर्ण अनेक कहानियां यहां प्रचलित हैं। कुछ ऐसी कथाएं भी हैं जो किसी विशेष धार्मिक अवसरों, व्रतों, उपवासों, अनुष्ठानों पर सुनाई जाती हैं। स्त्रियों के लिए भाईदूज, करवाचौथ, तथा होई आदि के त्यौहार बड़े महत्त्वपूर्ण हैं। इन अवसरों पर जो लोक-कथाएं सुनाई जाती हैं उनमें इनके भाई-प्रेम, पति-प्रेम तथा पुत्र-प्रेम एवं उनकी मंगलकामना व्यंजित हुई हैं। नारी के ये रूप यहां की गृहिणी के गौरव और आदर्श समझे जाते हैं।

निःसंदेह, छछरौली का लोक मानस उच्च सांस्कृतिक तत्त्वों और परंपराओं से संपन्न है। प्राकृतिक सुषमा भी कम नहीं है। कमी है तो आर्थिक स्मृद्धि

की। इस प्रदेश को अधिक समृद्ध और संपन्न बनाने के लिए, यहां कुछ तकनीकी शिक्षालय तथा औद्योगिक केंद्र खोले जाने चाहिएं। कई प्रकार के बड़े कारखाने यहां आसानी से लगाए जा सकते हैं, क्योंकि उनके लिए भाबड़, लकड़ी, कच्चा चमड़ा आदि कई प्रकार के कच्चे माल (Raw material) यहां प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। इस क्षेत्र का भूतत्वीय परिमाप (Geological Survey) भी किया जाना चाहिए। आखिर सोम नदी में यह स्वर्णरज तथा बन-तड़ागों में यह तिरमरापन कहां से आता है? 'बन संतौर' इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण स्थान है, जिसके सूक्ष्म परिमाप से मूल्यवान पदार्थों की उपलब्धि की संभावना है। मिलिटरी अकादमी के लिए यहां का वातावरण बड़ा अनुकूल और उपयोगी है।

(1965)

बातें तो बातें हैं, बातों से क्या?

सभी देशों की अपनी-अपनी समस्याएं हैं। हमारे देश की भी बहुत-सी समस्याएं हैं। यहां गरीबी है, बेकारी है, महंगाई है, निरक्षरता है और जनसंख्या बड़ी तेज़ी से बढ़ रही है। देश की स्वतंत्रता की स्वर्णजयंती के अवसर पर लाल किले से ध्वजारोहण करते हुए प्रधानमंत्री इंद्रकुमार गुजराल ने ऐसी बहुत-सी समस्याओं का ज़िक्र किया है। पर उन्होंने ज़ोर इस बात पर दिया कि सबसे बड़ी समस्या भ्रष्टाचार एवं घूसखोरी की है, जो हमारे देश की जड़ों को दीमक की तरह चाट रही है।

प्रधानमंत्री जी की इस बात से किसी को इंकार नहीं हो सकता, क्योंकि गरीब हो या अमीर, अफसर हो या व्यापारी, नेता हो या अभिनेता, सभी भ्रष्टाचार की लपेट में हैं। कोई रिश्वत देने में और कोई रिश्वत लेने में। छोटे-छोटे लोग, छोटे-छोटे काम के लिए, छोटे-छोटे कार्यालयों में, छोटी-छोटी रिश्वत देकर अपना काम निकालते हैं, यह तो सभी जानते हैं, पर पिछले कुछ वर्षों से बड़े-बड़े लोगों के बड़े-बड़े घोटालों का भी पर्दाफाश हुआ है। चाहे वह चीनी घोटाला हो या गेहूं घोटाला, मेडिकल के यंत्रों के आयात का घोटाला हो या आयुर्वेद की दवाइयों की खरीद का, सिक्योरिटी घोटाला हो या इंडियन बैंक घोटाला, यूरिया की खरीद का घोटाला हो या पशुओं के चारे का, सांसदों व विधायकों की खरीद का घोटाला हो या बोफर्सगन का, चारों तरफ—जनता में, संसद में, विधानसभाओं में, समाचार-पत्रों में, टेलिविजन में और न्यायालयों में इन्हीं घोटालों की बातें हो रही हैं। इनमें से बहुत-सी बातें तो आई गई हो गई हैं, कुछ को लोग भूल भी गए हैं। मगर कुछ बातें अभी भी गरम हैं।

इस तरह बातें तो बहुत-सी हो रही हैं, और भी हो सकती हैं, पर बातों से क्या होता है? बातें तो आखिर बातें ही हैं। बातें तो हम पाकिस्तान से भी कर रहे हैं और चीन से भी, बातें हम बंगलादेश से भी कर रहे हैं

और श्रीलंका से भी। बातें हम नेपाल से भी कर रहे हैं और भूटान से भी। पर इन बातों से कुछ निकले तब न। इधर अब हम कश्मीर के उग्रवादियों से भी बातें करना चाह रहे हैं और नागालैंड के विद्रोहियों से भी। बातें तो हम 'बोडो लैंड' के नेताओं से भी करना चाहते हैं, पर वे हमारी बात सुनने को तैयार ही नहीं हैं।

एक तरफ आडवानी जी खुराना जी से बात करके उन्हें मनाना चाह रहे हैं, तो दूसरी ओर केसरी जी ममता जी से बातें करके उन्हें बहलाने की कोशिश कर रहे हैं। एक ओर उत्तरप्रदेश में भाजपा व बसपा की बातों से उनकी खटपट की भनक सुनाई पड़ रही है तो उधर सुरजीत व बासु की बातों से उनका आंतरिक खिंचाव ज़ाहिर हो रहा है। यों करने को बातें तो और भी बहुत हैं। पर कोई बात बने तब न। अब देखिए न—पशुचारा घोटाला की बात को लेकर बिहार के मुख्यमंत्री को जेल जाना पड़ा। पर वे ठहरे 'किंग मेकर'। उन्हें बढ़-चढ़कर बातें करने की आदत है। बातों-ही-बातों में वे कह बैठे कि अगर वे जेल भी जाते हैं, तो जेल से ही 'राज' करेंगे। कुछ लोगों ने उनकी इन बातों की खिल्ली उड़ाई। पर वे अपनी बात के पूरे उतरे। देखते-ही-देखते उन्होंने अपनी धर्मपत्नी को राजगद्दी पर बिठवा दिया और आप स्वयं अस्पताल में मंत्रियों, सभासदों, अधिकारियों और मित्रों से राजकाज की बातें कर रहें हैं। यों बात तो कुछ भी नहीं थी, पर अब क्योंकि बात समाचार-पत्रों तक जा पहुंची है, तो बात के बिगड़ने का डर है। न्यायपालिका भी इन बातों पर कड़ा रुख अपना सकती है।

कई बार तो कोई बात बातों ही बातों में अटककर रह जाती है पर कभी-कभी किसी बात से बेबात का बतंगड़ भी खड़ा हो जाता है। हाल ही में ब्रिटेन की महारानी की भारत की सद्भावना यात्रा के दौरान अमृतसर जाने की बात आई, तो कुछ लोगों ने जलियांवाला बाग के हत्याकांड के लिए उनसे क्षमा-याचना करने की बात उठा दी। इस बात से परेशान होकर प्रधानमंत्री ने उन्हें अमृतसर न जाने की बात कही तो इस बात को लेकर फिर बावेला खड़ा हो गया। 8500 करोड़ रुपए की ऋण माफी की बात तो पीछे पड़ गई, उल्टे प्रधानमंत्री को ही जली-कटी बातें कहनी शुरू कर दी गईं। यही नहीं एक ओर तो इन बातों से टोहरा

और बादल में तनातनी शुरू हो गई है, दूसरी ओर इससे भारत और ब्रिटेन के आपसी संबंधों पर बुरा असर पड़ सकता है।

बात भ्रष्टाचार से शुरू हुई थी। अब देखना यह है कि भ्रष्टाचार उन्मूलन के संबंध में जो बात प्रधानमंत्री जी ने कही है, उस पर वे कहां तक पूरे उतरते हैं। बात तो उन्होंने बिहार के राजा से भी राजगद्दी छोड़ने की कही थी—पर बात बनी नहीं। मुख्यमंत्री ने उनकी कोई बात नहीं सुनी।

प्रधानमंत्री जी ने भ्रष्टाचार के खिलाफ 'सत्याग्रह' करने की बात भी कही है। देखते हैं इस बात को वे कैसे सिरे चढ़ाते हैं। गांधीजी ने सत्याग्रह का उपयोग शक्तिशाली ब्रिटिश शासन के विरुद्ध एक अमोघ अस्त्र के रूप में किया था। सारे देश की जनता उनकी बात पर मर-मिटने को तैयार रहती थी और गांधीजी अपनी बात पर अटल रहते थे। 'सत्याग्रह' में भी वे सबसे पहले, सबसे आगे खड़े होते थे। तभी उन्हें सफलता मिलती थी। अब देखना यह है कि प्रधानमंत्री जी अपनी बात को कैसे पूरा करते हैं। वे किस-किस घोटाले के विरुद्ध मुहीम शुरू करते है और 'सत्याग्रह' करनेवालों के साथ स्वयं किस पंक्ति में खड़े होते हैं।

'लोकसभा' और 'राज्यसभा' में पिछले कई दिनों लगातार बहुत से महत्त्वपूर्ण मुद्दों पर बहुत से सांसदों ने बहुत-सी बातें की हैं। अब देखते हैं कि इन बातों का वास्तविक लाभ कितना होता है।

(1997)

इनसे बचें

मन में कुछ उत्साह तथा अनेक आशंकाएं लिए हुए मैं पहली बार इतने दूरस्थ तथा अपरिचित स्थान पर आया था। सर्वप्रथम जिस व्यक्ति से मेरा परिचय यहां हुआ, उनका नाम था माधवराव सावरकर और प्रथम परिचय में ही उन्होंने कहा था, 'गोयल साहब! आप थोड़े से दिन भी यदि हमारे साथ रहे, तब आप हमें कभी भी भूल नहीं सकेंगे।' प्रथम परिचय में ही ऐसे व्यक्ति को पाकर मन की कुछ आशंकाएं कम हुईं। मुझे अभी आए तीन दिन ही हुए थे कि सावरकर साहब ने मुझसे पूछा कि मैं रह कहां रहा हूं। जब मैंने उन्हें बताया कि मैं 'लक्ष्मी होटल' में रह रहा हूं, तब वह तत्क्षण कहने लगे, 'वाह! यह भी कोई बात है कि हमारे यहां होते आप होटल में रहें, होटल का रहना भी कोई रहना है। आप हमारे घर चलिए। वहां सभी प्रकार का आराम मिलेगा। आप हमारे पेइंग-गेस्ट (Paying Guest) बनकर रह सकते हैं। पेइंग-गेस्ट की भी क्या, आपका क्या है, अपने आदमी हैं, चाहे आप कुछ भी न दें।'

यह सब वह एक सांस में ही कह गए और इससे पूर्व कि मैं कुछ कह पाता उन्होंने एक रिक्शा वाले को बुलाकर लक्ष्मी होटल चलने को कहा और सब सामान 15 मिनट में इकट्ठा करवाकर रिक्शा में लदवा दिया। मुझे उनके व्यवहार से बड़ा आश्चर्य हुआ, प्रसन्नता भी हुई। सारे दिन एकाकी होने के कारण खोया-खोया सा रहता था, किंतु अब, जैसे मनुष्य के रूप में मुझे देवता मिल गया हो। मेरे मन की सभी शंकाएं दूर हो गईं, और प्रसन्नता से रिक्शा में सवार हो गया। किंतु, उनके घर पहुंचते ही आधा उत्साह ठंडा पड़ गया। उनका मकान इतवारी में था जो नागपुर का सबसे पुराना घिनौना एवं गंदा भाग है। जिस मकान की वह इतनी प्रशंसा कर रहे थे, वह एक गुफा से बढ़कर नहीं था। एक

छोटा-सा कमरा उन्होंने मेरे लिए खोल दिया, जिसमें कोई खिड़की व रोशनदान नहीं था। केवल एक द्वार था, उसी से होकर भीतर आना पड़ता था। दिन में भी अंधेरा ही रहता था। कमरे के साथ ही स्नानागार था। स्नानागार क्या था समाधि लगाने के लिए बनी हुई 3×3 फुट की एक ऐसी कंदरा-सी थी, जिसमें सांस लेना भी दूभर था। एक दिन में ही मैं वहां घबरा गया। गर्मी के दिन थे। मकान में कोई सेहन (आंगन) भी नहीं था, गली इतनी तंग थी कि हवा भीतर घुसते ही भय खाती थी। ऊपर दूसरा परिवार रहता था, इसलिए सभी को भीतर ही सोना पड़ता। अगले दिन ही मैं एक बिजली का पंखा ले आया और जैसे-तैसे दिन काटने लगा।

अधिकतर वे लोग चावल ही खाते हैं। साथ कढ़ी, हरहर की दाल अथवा मदरासी ढंग की सांबर। दाल ऐसी कि डुबकी लगाने पर भी दाना खोज निकालना कठिन है। खैर मैंने कहकर अपने लिए रोटी का प्रबंध करवा लिया। पर रहने और खाने की ही मुसीबत नहीं थी। मकान में कमरे दो थे और बच्चे छः। इसलिए वे सारे दिन मेरे कमरे में ही उछल-कूद मचाते रहते। कोई पुस्तक को नीचे बटेर की भांति लटकाए उसके पन्ने फाड़ रहा है, तो कोई दवात से स्याही ऐसे उंडेल रहा है, जैसे केतली से चाय डाली जा रही हो। कोई महाशय पैन की निब से ज़मीन ही कुरेद रहा है। इस सबसे मैं इतना तंग आ गया कि छुटकारा पाने की कोई राह खोजता रहता था। इस उधेड़बुन में एक महीना व्यतीत हो गया। प्रथम को ही सावरकर साहब मेरे कमरे में आए और बड़ी शिष्ट वाणी में कहने लगे, 'गोयल साहब! यह एक छोटा-सा बिल था, वैसे तो कोई बात नहीं थी पर हिसाब तो मां-बेटी का भी चलता है।'

बिल देखकर मेरे होश उड़ गए। यह तो कहते थे कुछ भी न देना, इतनी रकम तो उस बढ़िया होटल में भी देनी नहीं पड़ती थी। यह नरक का जीवन और इतना भारी बिल। कुछ देर तो मैं कुछ बोल ही नहीं सका, बिल की ओर ही देखता रहा। पर क्या करता वह रुपए तो जैसे तैसे देने ही पड़े! इसके अतिरिक्त बीच में कई बार उन्हें तथा उनके परिवार को जो सिनेमा दिखाना पड़ा था तथा उनके बच्चों के लिए मिठाई, फल तथा खिलौने आदि लाया था, वह अलग था। अब इस बंदीगृह से निकलने का

कोई रास्ता खोजना आवश्यक था। अगले दिन ही मैंने कहा, कि मेरा एक संबंधी कल मुझे मिला है, वह रामदास पीठ में रहता है, मैं उसी के पास जा रहा हूं! और फिर उसी होटल में आ गया।

कुछ दिन तो आराम रहा, पर शीघ्र ही एक दिन वह फिर आ धमके। उन्हें शिकार के हाथ से निकल जाने की चिंता थी। इसलिए मेरे बताए पते पर मुझे न पाकर खोजते-खोजते फिर यहीं आ पहुंचे और कहने लगे, 'वाह साहब! मेरे साथ भी यह चतुराई, आप तो कहते थे भाई के घर जा रहा हूं।'

'भाई क्या करूं, वहां स्थान कम था, फिर आपको भी तंगी थी। आपकी पत्नी, बच्चे...., सोचा क्या कष्ट देना है।'

'वाह! तकलीफ की इसमें क्या बात है। मैं उन्हें आज ही मायके भेज देता हूं, आप चलें।' किंतु, मैं जब न माना, तब वह विवश हो गए। निराशा भी कुछ हुई ही होगी।

मैंने पूछा, 'चाय पीजिएगा?'

और उन्होंने संक्षेप में उत्तर दिया, 'हां पीएंगे ना।'

बैरा जब चाय ले आया तब फरमाने लगे, 'अरे! और कुछ नहीं है क्या, कोई नमकीन थोड़ा ले आओ।'

इस प्रकार वह दूसरे-तीसरे दिन आते। स्वभाव के अनुसार मैं उन्हें चाय के लिए पूछता और वह 'हां पीएंगे ना' कहकर अपनी स्वीकृति से कृतार्थ करते। अब वह अपने साथ अपने अन्य मित्रों को भी लाने लगे थे, जिनमें से एक श्री कारेकर थे। अच्छे शरीर के पहलवान-से थे। साथ ही कुछ कवि भी थे। वह एक ओर अपनी बेतुकी कविताओं से बोर करते, दूसरी ओर चाय, उपमा, डोसा, इडली आदि पर हाथ साफ करते! यही नहीं कभी-कभी वे लोग खाने के समय भी आ धमकते। मैं शिष्टतावश पूछ बैठता, 'खाना खाइये' और वे तपाक से कहते—'हां खाएंगे ना'। 'क्यों नहीं; नगर में और होटल ही कौन-सा है?' कभी-कभी वह संध्या समय आते और सिनेमा चलने का प्रस्ताव रखते। इच्छा अनिच्छा से चलना ही पड़ता। सिनेमा पर पहुंचते ही वह कहते, 'गोयल साहिब! आप टिकट लें हम ज़रा पान खा आएं।'

एक दिन रविवार को प्रातः ही वे लोग आए और कहने लगे, 'गोयल

साहिब! चलिए आज आपको रामटेक (रामगिरी) की सैर करवाते लाएं, बहुत रमणीय स्थान है। कालिदास ने 'मेघदूत' की रचना वहीं बैठकर की थी। देखेंगे तो चित्त प्रसन्न हो जाएगा।' मुझे भी भ्रमण का, विशेष रूप से पर्वतीय प्रदेश का कुछ शौक है, मौसम भी सुहावना था, मैं तैयार हो गया।

'गोयल साहिब मेरा ख्याल है, भोजन यहीं से करके चलना चाहिए,' और मेरे हां कहने से पूर्व ही उन्होंने बैरे को बुलाकर चार व्यक्तियों के खाने का आर्डर भी दे दिया। साथ ही चार टिक्की मक्खन भी, यद्यपि मैं जानता था कि घर पर वह तेल का ही प्रयोग करते हैं। 'अच्छा गोयल साहब। अब चलें, पर हां अपने कैमरे में एक फिल्म भी डलवा लें, उसके बिना क्या मज़ा, और कुछ खाने के लिए फल आदि भी साथ ले लेने चाहिएं।' यह प्रस्ताव श्री कारेकर का था। अब बस स्टैंड पर भी वही हुआ जो होना था, 'गोयल साहब आप टिकट लें और हम ज़रा पान खा आएं।' सोचा कुछ सुना दूं, पर संस्कारों ने जैसे मुंह बंद कर दिया।

रामटेक अच्छा रमणीय स्थान था, मैंने कुछ स्नैप लिए। श्री सावरकर और कारेकर अवश्य सामने खड़े हो जाते, जिससे सभी फोटुओं का सत्यानाश हो गया। कोई शक्ल भी तो हो? दिखाऊं तो किसको कि ये मेरे मित्र हैं। लौटते समय बस स्टैंड पर फिर वही हुआ, जो होना था! धीमी-धीमी बूंदे पड़ रही थीं। व्यास जी का कवि हृदय उबल पड़ा और वह कुछ गुनगुनाने लगे।

मैं इस प्रतिदिन के परिचय तथा मित्रता से तंग आ गया था। मेरी यह परेशानी छुपी न रही और एक दिन होटल के मैनेजर श्री पराशर, जो कुछ भले आदमी थे कहने लगे, 'बाबूजी मैं तो पहले ही समझता था कि एक शरीफ आदमी इन्हें फंस गया है, और यह इन्हें खूब निचोड़ेंगे, आप ज़रा होशियारी से काम लें।' मैंने उन्हें ही कोई राह सुझाने की प्रार्थना की। इस पर वह बोले, 'वाह! यह क्या मुश्किल काम है, मैं उन्हें कल ही ठीक किए देता हूं। आज तक के हिसाब लगाकर सब पैसे उनसे मांग लूंगा, फिर देखें आप।' यह सुझाव मुझे पसंद नहीं आया। तब उन्होंने कहा, कि 'अच्छा आप ऐसे करें कि उन्हें अपने घर ले चलने के लिए कहें, और उनसे कुछ खर्च करवाने की कोशिश करें।' मुझे यह बात जंची। इस बार जब श्री कारेकर

जी आए, तो मैंने उनसे कहा, 'भाई हमें किसी दिन अपना घर तो दिखाएं। भाभी जी से मिलने को भी मन चाहता है, फिर कभी कोई काम ही पड़ जाता है।' इस पर 'हां दिखाएंगे ना' कहकर उन्होंने स्वीकृति दी। मैं हर बार जब वह आते उन्हें घर दिखाने को कहता पर वह 'हां दिखाएंगे ना' कहकर टाल जाते। वह न तो इंकार ही करते थे और न दिखाते ही थे। भविष्यकाल में ही उत्तर देते थे, उस भविष्य में जो कभी वर्तमान नहीं बनता। आखिर मैंने एक तरीका निकाला। इस बार जब कारेकर साहिब आए, तब मैंने उनसे कहा, 'कारेकर साहब, अभी 15 तारीख है, रुपए सब समाप्त हो गए हैं। आप कृपा करके 50 रुपए उधार ही दे दें। पहली को लौटा दूंगा।'

'क्षमा करना, गोयल साहब, पचास रुपए तो क्या आप सौ ले लेते और लौटाने की भी क्या बात थी, पर क्या करूं इस बार तो एक पैसा भी नहीं बचा। पत्नी को मायके जाना था, सभी खर्च हो गए' और आज वह चाय की मांग किए बिना ही चले गए। मैंने शुक्र किया, एक बला तो टली। अब संध्या समय श्री सावरकर सिनेमा का प्रस्ताव लेकर आए-- और कहने लगे, 'यार, मिस्टर X लगी है, कमाल की पिक्चर है। आप फोन करके सीट रिजर्व करवा लें। आप 'आनंद' पर पहुंचे और मैं घर होकर आया।' 'भई फोन की क्या आवश्यकता है, आपका घर उधर ही तो है, आप जाते हुए टिकट लें, मैं समय पर पहुंच जाऊंगा।' यह सुनकर वह अनेक बहाने बनाने लगे और कहने लगे—'अच्छा कल चलेंगे, कल रविवार भी है।' अगले दिन 5 बजे आने का वचन देकर आज वह भी चाय की बिना मांग किए चले गए। उनके वह 5 कभी नहीं बजे। मैंने आराम की सांस ली। अब मुझे जब वह मिलते, मैं उन्हें पूछता 'सावरकर साहब, भई उस पिक्चर के प्रोग्राम का क्या बना'? और वह कभी अपनी पेचिस का, कभी अपनी पत्नी की बीमारी का बहाना बनाते। श्री कारेकर जब मिलते उन्हें पूछता, 'कारेकर साहब, बहुत दिनों से दर्शन नहीं दिए।' तब वह कहते, 'गोयल साहब! पत्नी बीमार है, उसे हस्पताल लेकर जाना होता है।'' इस प्रकार उन लोगों से मुझे त्राण मिला।

कुछ दिनों पश्चात मुझे अन्य नौकरी मिल गई और मैं वापिस आने को था। एक दिन वह सभी आ धमके और मिरासियों की भांति अनेक बधाइयां देते हुए कहने लगे—'गोयल साहब अब तो आप अपने घर अच्छी Post पर जा रहे हैं। कुछ खिलाइए पिलाइए ना।' सोचा कितने धूर्त हैं, खिलाना तो

इन्हें मुझे चाहिए, उल्टे मेरी ही मंजाई करना चाहते हैं। पर यह सोचकर कि चलो इनसे सदा के लिए त्राण मिल रहा है, अब चलते समय इन लज्जाहीनों से क्या झगड़ा, मैंने उनकी इच्छानुसार पार्टी की।

संध्या समय मद्रास मेल में बैठकर जब मैं पंजाब के लिए चला, तब उस समय श्री सावरकर के प्रथम दिन के वे शब्द मेरे कानों में गूंज रहे थे, 'गोयल साहब। यदि आप थोड़े दिन भी हमारे साथ रहे, तब आप हमें कभी नहीं भूल सकेंगे।' मुझे थोड़ी-सी हंसी आ गई, यह सोचकर कि सचमुच मैं इन मित्रों को कभी भूल नहीं सकता।

(1959)

हम 'नहीं' क्यों नहीं कह सकते

मैं इस प्रश्न के शास्त्रीय पक्ष में जाना नहीं चाहता, परंतु इतना अवश्य कहना है कि जहां हम में यह दुर्बलता है कि हम स्पष्ट रूप से 'नहीं' नहीं कह सकते, वहां यह भी सत्य है कि हम 'नहीं' सुनने के भी अभ्यस्त नहीं हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि 'नहीं' न कहने में हमें बड़ा कष्ट उठाना पड़ता है। परंतु यह भी सत्य है कि कई बार 'नहीं' कहने से भी बहुत हानि हो सकती है। वह जानते हैं कि हमारा वेतन उनसे कम है, परिवार भी कम नहीं है। परंतु हमारी आर्थिक स्थिति को जानते हुए भी वे प्रस्ताव करते हैं, "भाई मुझे मुन्ने के लिए एक गाय खरीदनी है, यदि 200) उधार दे दो तो बड़ी कृपा होगी।"

हम अपनी आय-व्यय का लेखा-जोखा बताकर अपनी आर्थिक कठिनाई के कारण असमर्थता प्रकट करते हुए क्षमा मांगते हैं तो चोट खाए हुए सांप की भांति भौंए उठाकर वे कहते हैं "आज पहली बार तुम से एक काम के लिए कहा था, कैसा टका-सा जवाब दिया है, तुम जैसे स्वार्थी से और आशा ही क्या हो सकती है।" और वे सदा के लिए हमारे शत्रु बन जाते हैं।

बहुधा ऐसा भी होता है कि किसी विशेष कार्य में अत्यधिक व्यस्तता के कारण हम किसी को एकदम 'हां' नहीं कह सकते, और बदले में हमें असुविधा एवं हानि तो होती ही है, अपशब्द भी सुनने पड़ते हैं। हमारी पत्नी को 12 बजे गाड़ी पकड़नी है, हम स्टेशन जाने को तैयार खड़े हैं, तभी एक महाशय आ धमकते हैं और फरमाइश करते हैं—"कहिए साहब किधर की तैयारी है?"

"भाई ज़रा तुम्हारी भाभी को गाड़ी चढ़ाने जाना है।"

"अजी साहब, अभी गाड़ी में तो आधा घंटा है, बैठिए ज़रा हमारी यह कहानी तो सुन लीजिये। अभी-अभी लिखकर लाया हूं। देश की संकटकालीन

स्थिति में भिखमंगों का क्या कर्त्तव्य है, इसी पर लिखी है। सोचा आप से अच्छा साहित्यकार और कौन मिलेगा—आप से ही सुझाव लेने चाहिए।"

हम अपनी कठिनाई बताते हुए उनसे प्रार्थना करते हैं कि वे फिर किसी समय आने का कष्ट करें, या हम स्वयं ही उनके यहां पहुंच जायेंगे।

परंतु, वे कब मानने वाले थे—"अजी साहिब बस 10 मिनट ही तो लगेंगे, आप बैठिये भी तो सही, बड़ी उम्मीद लेकर आया हूं।" पर हमारी दृष्टि तो घड़ी पर लगी हुई थी जो इस बीच 15 मिनट आगे यात्रा कर चुकी थी। उधर पत्नी उतावली हो रही थी। हमने फिर अपनी असमर्थता प्रकट करते हुए क्षमा मांगी। परंतु; वे यूं ही मानने वाले न थे. . . .वे तो बज़िद थे कि हम उनकी कहानी सुन कर ही गाड़ी पकड़ सकते हैं। खैर जैसे-तैसे उनसे जान छुड़ाकर स्टेशन पहुंचे तो देखा कि गाड़ी छूट चुकी है। इधर तो पत्नी हम पर बिगड़ी, "किसी समय भी तो तुम्हारे ये मित्र तुम्हारा पीछा नहीं छोड़ते—भाई साहिब स्टेशन पर लेने आएंगे, शाम को उनकी सगाई हैं—अब कोई गाड़ी भी नहीं है—सब चौपट हो गया; क्या कहेंगे वे लोग।"

उधर जब सुबह को कॉलिज जाते हैं तो 'अध्यापक कक्ष' के बाहर ही हमारे कान में आवाज़ पड़ती है, "हूं, अपने को बड़ा साहित्यकार समझता है...एक अक्षर तो लिखना आता नहीं, बनता है.....कहानीकार....अजी मैं कहता हूं....।" हम ठिठक जाते हैं और सोचते हैं 'हमने नाहक 'नहीं' कहा, यदि कहानी सुन लेते तो 10 मिनट ही लगते, गाड़ी भी मिल जाती, न तो पत्नी से जली-कटी सुननी पड़ती और न ही इन महाशय से ये उपाधियां प्राप्त होतीं।'

कई बार ऐसा भी होता है कि कोई मित्र हमसे किसी ऐसे अनुचित कार्य के लिये कहे कि हमें 'नहीं' कहते ही बनता है, और तब परिणाम वही होता है जो ऐसी स्थिति में संभव है। एक बार एक मित्र आये, कहने लगे—

"यार देखो! प्रोफेसर मुन्नूलाल तुम्हारे घनिष्ट मित्र हैं। उनके पास एम. ए. के पर्चे आये हैं। मेरे लड़के ने परीक्षा दी है। मैट्रिक, इंटर और बी.ए. में तो थर्ड डिवीजन थी, यदि एम.ए. में फर्स्ट डिवीजन आ जाए तो कहीं प्रोफेसर ही लग जाए—ज़रा कह दो न। बड़ी कृपा होगी।"

हम उन्हें समझाते हैं कि यह तो बहुत अनैतिक है। हमारे बस का यह काम नहीं है। और वे बिगड़ते हुए कहते हैं, "अजी रहने भी दो, बड़े

आए नीतिवान, हम जानते हैं इस देश में कितने नीतिवान हैं।" वे झुंझलाते हुए चले जाते हैं और हम अपना- सा मुंह लेकर बैठ जाते हैं।

एक बार हम अपने एक मित्र के पास बैठे हुए थे, तभी वहां एक महाशय आए और कहने लगे, "अजी प्रोफेसर साहिब, मैं तो दो बार आ चुका हूं, आपके दर्शन ही नहीं होते—देखिये आपकी लड़की की शादी है, ज़रा एक निमंत्रण-पत्र तो बना दीजिये—बढ़िया-सा हो।"

"आइये, आइये मिस्तरी जी, बधाई हो।" और दो मिनट में उन्होंने निमंत्रण-पत्र तैयार करके उनके हाथ दिया और उन्होंने धन्यवाद करके अपनी राह ली। इसी समय एक और साहिब पधारे जो अपने पुत्र की शादी के लिये सेहरा लिखवाने की फरमाइश लेकर आये थे। प्रोफेसर साहिब ने उन्हें अगले दिन आकर ले जाने का आश्वासन दिया। इसी बीच एक ऐसे व्यक्ति भी आये जो चाहते थे कि नगरपालिका के नाम उनके उस पड़ोसी के विरुद्ध एक आवेदन-पत्र लिख दिया जाए, जिसने उनके मकान के पीछे एक रोशनदान बना दिया था। बिना कुछ कहे उन्होंने यह काम भी किया और उन्हें विदा किया। जब हमसे यह सब सहा न गया तो पूछ बैठे "भाई उसे तो किसी अर्ज़ीनवीस के पास जाना चाहिए था। आप भी बेकार ऐसे लोगों को मुंह लगाते हैं। भला आप से 'नहीं' क्यों नहीं कहा जाता। इसी से तो इन लोगों का उत्साह बढ़ता है, फिर आप कहते हैं कि लोग कुछ लिखने नहीं देते।"

मेरे इस कथन पर वे केवल मुस्करा दिए और इधर-उधर की बात करने लगे। यह चर्चा चल ही रही थी कि बाहर से सुनाई दिया—"प्रोफेसर सा..... हि.....ब, कपूर सा...सा....हिब।।"

"आइए सेठ जी, आइए....कहिए कैसे दर्शन दिए।"

"अजी प्रोफेसर साहब, अजीब मुसीबत है। इन इन्कमटैक्स वालों ने तो नाक में दम कर रखा है—देखो न हम पर दो हजार टैक्स लगा दिया है।"

"तो क्या हुआ सेठ जी आपने तो लाखों कमाया है। अगर दो हज़ार लगा भी दिया तो क्या हुआ।"

''अजी तो क्या इनके बाप ने दिया है—दिन-रात मेहनत करते हैं..... खून बहाते हैं।''

"मन में तो आया कह दूं कि 'खून बहाते नहीं खून चूसते है, परंतु

शिष्टता ने मुंह बंद कर दिया।

कपूर साहिब बात को टालते हुए बोले, "अच्छा कहिए में आपकी क्या सेवा कर सकता हूं?"

"अजी प्रोफेसर साहब, बस थोड़ा-सा कष्ट कीजिए। इसके विरुद्ध आवेदन-पत्र देना है—ज़रा कष्ट करके हमारा केस तैयार कर दें।"

कपूर साहब ने समझाया—"सेठ जी! यह काम तो किसी अच्छे वकील से करवाना चाहिए, वे केस ठीक तैयार कर सकते हैं? मुझे तो इस मामले में कुछ भी जानकारी नहीं है।"

"अजी साहब, इन वकीलों की भी खूब कही, इन्हें आता ही क्या है, ये तो बस लूटना जानते हैं—अफसरों से मिले रहते हैं, बांट-बंटवारा करना भर जानते हैं.....भला आप से ज़्यादा काबिल कौन हो सकता है।" कोई आधा घंटा कपूर साहब उन्हें समझाते रहे कि यह काम उनके बस का नहीं है, मगर वे तो यही समझते हैं कि कपूर साहिब से बढ़कर कोई योग्य हो ही नहीं सकता। आखिर कपूर साहब को झखमार कर जैसा-तैसा उनका केस तैयार करना ही पड़ा।" उनके चले जाने पर बोले,

"देखा आपने, आधा घंटा दिमाग चाटा, फिर भी पीछा नहीं छूटा। इसीलिए तो मैं कहता हूं कि 'नहीं' कहने से तो यही अच्छा है कि चुपके से सिर ओखली में दो और चूं तक न करो। हमारे लोग 'नहीं' सुनने के अभ्यस्त ही नहीं हैं।"

(1960)

अंधविश्वास कितने सत्य....?

पंजाबी विश्वविद्यालय पटियाला के प्रवेश द्वार पर, ज्ञान-विज्ञान के इस महान् मंदिर के सामने, पच्चीस पैसे में सारा भविष्य बताने वाले ज्योतिषी जी को अपना ज्योतिषशास्त्र बिखेरे बैठे देखता हूं, तो सोचता हूं कि सारे अंधविश्वासों, जादू-टोनों और भूत-प्रेतों की कथाएं क्या ज्ञान-विज्ञान के इस युग में भी वैसी ही नहीं है, जैसी आज से पचास या सौ वर्ष पूर्व थीं।

साधारण और अशिक्षित लोगों की बात छोड़िए। मैं विश्वविद्यालय के एक ऐसे कुलपति को बहुत निकट से जानता हूं, जिनकी पत्नी के स्वप्न में साईं बाबा आते हैं और बेटी में देवी आती है। जो अनिष्ट को दूर रखने के लिए पूजा-पाठ करवाते हैं और पदोन्नति के लिए तांत्रिकों से यज्ञ करवाते हैं। जिन्हें इस बात का विश्वास है कि एक लाख मंत्र जाप करने का संकल्प लेकर वे मरते-मरते बचे थे और जिनकी आस्था है कि जब वे किसी शुभ कार्य के लिए बाहर जाएं तो घर का कोई सदस्य पानी का कलश लेकर उनके सामने से गुज़रे। जिनकी मां अभी भी पड़ोसी लोगों पर जादू-टोने करती है तथा उसमें उनकी छिपी सहमति रहती है।

वस्तुतः, क्या गांव और क्या महानगर, क्या शिक्षित वर्ग और क्या अशिक्षित वर्ग, क्या संपन्न तथा अभिजात्य और क्या निर्धन और पिछड़े हुए वर्ग के लोग, सब में आज भी अंधविश्वास मौजूद हैं। यह दूसरी बात है कि शिक्षित वर्ग में ये अब कुछ कमज़ोर पड़ गए हैं, यद्यपि पूर्णतः समाप्त नहीं हुए हैं। हम अब भी बड़े-बड़े नगरों में चौकियां लगते देखते हैं तथा देवी-प्रवेश-युक्त महिलाओं को सिर धुनते देखते हैं जिनके सम्मुख अच्छे-अच्छे घरों के पढ़े-लिखे लोग भी हाथ बांधें मंगल वाक्य सुनने के लिए आतुर खड़े रहते हैं। महानगरों में बड़े-बड़े राजनीतिक नेता तांत्रिकों के चक्कर में हैं, यह कौन नहीं जानता। किंतु, वैसे मुहल्ले नगरों में अब नहीं है जहां जिन्न,

सैय्यद, भूत-प्रेत और चुड़ैलें इकट्ठे वास करते थे तथा जादू-टोनों को लेकर जहां औरतों में नित्य चख-चख होती रहती थी। जवान स्त्रियों को बहुदा हिस्टिरिया के दौरे पड़ते देखे जाते थे और रोगों का उपचार सयानों की झाड़-फूंक से किया जाता था। स्वतंत्रता से कुछ वर्ष पूर्व का एक चित्र मेरे ज़ेहन में उभर आया है। मुझे याद आ रहा है कि कभी मुहल्ले में सुनाई पड़ता था कि किसी पुत्रहीन स्त्री ने किसी बालक के बाल काट लिए हैं, तो कभी सुनाई देता था कि किसी के घर के बाहर खून का लिपटा कोई वस्त्र मिला है या किसी के द्वार पर खून के निशान लगे हुए दिखाई पड़े हैं। ऐसी ही छोटी-छोटी बातों को लेकर औरतों में अक्सर तकरारें होती रहती थीं।

कभी-कभी होता था कि किसी के घर में रात को अचानक पत्थर गिरने लगते थे और घर के लोग दुबककर भीतर जा घुसते थे और सोचते थे कि सामने वाले अहाते में जो खोखला वृक्ष है, उसकी कोटर में जो जिन्न रहता है, वही क्रुद्ध होकर ये पत्थर फेंक रहा है और उस की मिन्नतें एवं प्रार्थनाएं की जाने लगती थीं। मुझे पड़ोस की उस जवान मुसलमान लड़की की याद आ रही है, जब मैं बहुत छोटा बालक था, जिसने मुझे एक दिन मिठाई खाने को दी थी और पूछने पर बताया था कि वह मिठाई, जेठ की तपती सूनी दोपहरी में बाहर 'जंगल' जाते समय उसके जिन्न दोस्त ने उसे दी थी। मुझे वह अत्यंत सुंदर, सुडौल और जवान मालिन भी याद आ रही है जिसमें कहा जाता था कि चुड़ैल वास कर रही है और चुड़ैल को उसमें से निकलवाने के लिए प्रति मास ओझे को बुलवाकर आग की धूनी के सामने उसे बुरी तरह पिटवाया जाता था। मुझे याद है कि उसका पति बूढ़ा था, जिसकी पहली पत्नी के कई बच्चे भी थे। कई बर्षों तक ओझे की मार खा-खा कर उसका गुलाब-सा चेहरा सूखता गया था और कुछ वर्ष बाद वह इस जहान से चल बसी थी।

मुझे उस ताई की भी याद है जो अपने पोतों की बीमारी में झाड़-फूंक के लिए सयानों को बुलाया करती थी और हम लोगों को सख्त हिदायतें थीं कि ज्योंही सयाने की वह पहचानी सूरत मुहल्ले में दिखाई पड़े हम तुरंत घर में घुस जाएं। ताकि वापिस लौटते समय उसकी छाया हम पर न पड़े अन्यथा रोगग्रस्त बालक की बीमारी की छाया हम पर पड़नी निश्चित थी।

मुझे वह रोमांचक घटना याद है जब मेरे पिताजी गांव से लौटते समय

रात घिर आने पर बदहवासी की हालत में घर में घुसे थे। हम सभी बहन-भाई मां के साथ चौके में बैठे चूल्हे की आग में हाथ सेंक रहे थे, जब पिताजी ने आकर बताया कि एक चुड़ैल मुहल्ले के बाहर के सूखे पेड़ के नीचे खड़ी हुई थी और जब वे वहां से गुज़रे तो वह उनके पीछे-पीछे चलने लगी थी। उनके अनुसार उसका शरीर बहुत जर्जर था। उसके पांव के पंजे पैर की एड़ी की ओर पीछे की तरफ थे। पिताजी की बात सुनकर हम सभी कांप उठे थे और मां ने तुरंत दहलीज की कुंडी बंद कर दी थी। मुझे अपने बचपन के वे दिन भी याद हैं, जब हम रात को देर तक गली में कबड्डी, भेजा-भजाई या लुका-छिपी खेला करते थे तथा पास ही एक दुमंजली हवेली के नीचे के कमरों में छिपा करते थे। इस हवेली की दूसरी मंजिल में हाइकोर्ट के जज रहा करते थे जिनके लड़के हमारे साथ पढ़ते थे। नीचे कई बंद कमरे और लंबे दालान खाली पड़े हुए थे। ऐसा समझा जाता था कि उन कमरों में सैय्यद का निवास है। इसलिए दिन में भी वहां जाते लोग डरते थे। किंतु, बालक तो बालक ठहरे, रात के अंधेरे में वहां जा छिपते। कोई कहता सैय्यद से मेरी मित्रता है, कोई कहता यह अच्छा सैय्यद है, किसी को कुछ नहीं कहता। जब एक बालक दूसरे को वहां ढूंढ़ने आता तो दूसरे बालक भांति-भांति की फुसफुसी आवाज़ें करते और यह कहते हुए दौड़ जाते—'सैय्यद आ गया-सैय्यद आ गया।'

मुझे अधेड़ आयु के उस ज्योतिषी की भी याद आ रही है, जो रात को प्रायः हमें गली में मिला करता था और जिसके बारे में कहा जाता था कि वह रातभर राजाओं की समाधियों में बैठकर सिद्धि करता है और सुबह होने पर वहां ताल में स्नान करके लौटता है। प्रातः मुंह अंधेरे कई बार उधर से लौटते हुए उसकी हम से भेंट भी हुई और उसके दिए कमल पुष्प आज भी मेरी स्मृतियों में खिले हुए हैं। कुछ वर्षों के बाद मैंने देखा था कि ज्योतिषी जी विक्षिप्त अवस्था में निर्वस्त्र घर में पड़े पीतल की एक थाली घुमाते रहते थे और समझते थे कि वे 'परब्रह्म' हैं और सारे 'ब्रह्मांड' को घुमा रहे हैं। जब बालक उन्हें छेड़ने के लिए द्वार पर जा कर पत्थर मारते थे तो हाथ में कुल्हाड़ी लेकर वे बाहर निकलते थे और अपने घर के सामने वाले पीपल के पेड़ की ओर कुल्हाड़ी करके ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाया करते थे—"कंचनी की रूह तुझे काट के गिरा दूंगा।" क्योंकि वे समझते थे कि 'उसकी' प्रेत-आत्मा

उसी वृक्ष में निवास करती है। एक अभद्र सी गाली वे एक पुरुष को भी दिया करते थे। सुना जाता था कि वे एक विधवा स्त्री को अपने घर बिठाना चाहते थे। किंतु, उनकी यह मनोकामना पूरी नहीं हुई थी क्योंकि उस स्त्री का संबंध किसी अन्य पुरुष से था। कुछ लोगों का यह भी कहना था कि सिद्धि करते समय उन्हें उसी स्त्री का ध्यान आ गया था, जिससे प्रेत ने उन्हें उल्ट दिया था। इस तरह के एक युवक को भी मैं जानता हूं, जो पास की नदी के तट पर शमशान में जाकर रात्रि को 'सिद्धि' किया करता था।

और भी इस तरह की बहुत-सी घटनाएं उस मुहल्ले में घटती रहती थीं। तपती दोपहरी में नंगे पांव गलियों में खेलते रहने पर जब किसी बालक को बुखार हो जाता था तो यही समझा जाता था कि बालक ने दोपहर में जिन्न वाले वृक्ष के नीचे पिशाब किया था, इसलिये जिन्न का उस पर साया है। उस साये को उतारने के लिये उसके ऊपर से नमक-तेल-पानी उतार कर चौराहे पर दिया जाता था या साईं जी से विभूति लाकर उसके माथे पर लगाई जाती थी। हाजी साहब से तावीज़ बनवाकर बालकों के गले में प्रायः पहनाया जाता था कि उन पर जिन्न का साया न पड़े। यदि कभी किसी गाय का दूध सूख जाता तो मस्जिद के मौलवी साहब से पानी पढ़वा कर उसे पिलाया जाता था या फिर मंदिर के महंतजी से मंत्र पढ़वा कर पानी लाया जाता था, जिससे उस का दूध उतर आने की पूर्ण आशा होती थी। दुधारू पशुओं में जब कोई भयंकर बीमारी फैलती थी, तो रात-रात भर जोगी सारंगी पर हीर-रांझा की कथा गा-गाकर उन्हें सुनाया करते थे, जिससे उनके रोग-मुक्त हो जाने की पूरी संभावना होती थी। प्लेग की भयंकर बीमारी फूट पड़ने पर जब बहुत से व्यक्ति काल-क्लवित हो गए थे तो प्लेग की देवी को रिझाने के लिये 'जग' किया गया था और बकरी की बलि भी दी गई थी।

इन्हें अंधविश्वास कहें या ये मनो-ग्रंथियां हैं? युंग और फ्रायड के अनुयायियों के लिए इनकी मनोवैज्ञानिक व्याख्याएं प्रस्तुत करना भी कठिन नहीं है। किंतु, आश्चर्य तो यह है कि आज के वैज्ञानिक युग में भी इस तरह के अंधविश्वास उसी तरह प्रचलित हैं जैसे आज से पचास-सौ वर्ष पहले थे। भले ही किसी एक मुहल्ले में यह सब न मिले—यत्र तत्र कहीं न कहीं इस प्रकार के सभी अंध-विश्वास आज भी ज्यों-के-त्यों दिखाई पड़ रहे हैं।

(1981)

उस्ताद पन्नी लाल

मनुष्य के व्यक्तित्व को बनाने और बिगाड़ने में 'नाई' का महत्त्वपूर्ण स्थान है। मेरे इस कथन से तो आप फौरन सहमत हो जाएंगे कि नाई महोदय अपने हाथ की सफाई से पुरुष अथवा स्त्री के सौंदर्य को अधिक आकर्षक, प्रभावशाली और कृत्रिम बना सकते हैं, परंतु इसमें आपको शायद कुछ आपत्ति हो कि वह हमारे व्यक्तित्व को बिगाड़ भी सकता है। शायद इसलिए कि यह बात आपके अनुभव में न आई हो और आप उसके पास से सदा अधिक आकर्षक हो कर ही लौटें हों, परंतु हमें तो जब कभी उन दिनों की याद आती है—जब युवावस्था में ही हम एक नाई के हाथ की करामात से आयु-भर के लिए गंजे होने लगे थे, तो कलेजा दहल उठता है। उन दिनों हम एम. ए. में पढ़ा करते थे। अचानक हमारे सिर पर कई स्थानों से बाल उड़ गए और गहरे सफेद गड्ढे पड़ गए। हमने बहुत इलाज करवाए, परंतु मर्ज़ बढ़ता ही गया, ज्यों-ज्यों दवा की। आखिर मजबूर हो कर हमें कई बार सिर को सफाचट करवाना पड़ा—क्योंकि हमें बताया गया था कि सिर में एक विशेष प्रकार का कीड़ा लग जाता है, जो भीतर बालों को खाता रहता है और उस कीड़े को मारने के लिए पहले सिर को मुंडवाना ज़रूरी है। बात वास्तव में इस प्रकार हुई कि हमारे नाई ने किसी ऐसी कैंची से हमारी 'हजामत' बनाई, जिससे वह ऐसे व्यक्ति की हजामत कर चुका था जिसे यह बीमारी थी। इसलिए हम भी उसी बीमारी के मरीज़ हो गए। पता नहीं और कितने ऐसे ही निरीह व्यक्ति भी इस के शिकार हुए होंगे।

आज जब हमारे सिर पर अच्छे खासे खूबसूरत बाल आ गए हैं, तो बहुधा मित्रगण मज़ाक में कहते हैं, 'भई, वैसे तो सुनते हैं कि मनुष्य ज्यों-ज्यों आगे पढ़ता है उसके सिर के बाल उड़ते हैं, मगर इनका हाल उल्टा है, ये ज्यों-ज्यों पढ़ते जाते हैं, इनके बाल और घने होते जाते हैं।'

अब आप ही बताएं कि हम उन्हें बताएं क्या? इतना अवश्य है कि वे इस मज़ाक में बरबस हमें वे दिन स्मरण करा देते हैं, जब शर्म के मारे कई-कई दिन हम घर में अपना गंजा सिर छुपाए रखते थे और मित्र हमें 'भाग्यशाली' होने की बधाइयां भी देते थे। साथ ही सांत्वना प्रकट करते हुए कहा करते थे, 'यार! अभी तो इनकी शादी भी नहीं हुई।' अर्थात् यदि हम इसी प्रकार गंजे रहे तो हमें पत्नी का मुख भी देखना नसीब न होगा और अब जबकि हमारे सिर पर बाल भी आ गए हैं, घर पत्नी से भी शोभित हो गया है तो उन्हें शायद जलन होती है। इसीलिए वे कहते हैं, कि....'हमारे बाल इतने घने....।' शायद वे इसी में खुश थे कि हम गंजे बने रहते, उनके मज़ाक का केंद्र होते और कुंआरे ही मर जाते।

अब भी जब कभी 15 या 20 दिन के बाद बाल काटने-से लगते हैं और हमें किसी नाई के पास जाने की आवश्यकता अनुभव होने लगती है, तो एक बार तो कलेजा मुंह को आने लगता है, दिल कांप उठता है, पर मजबूरी को देखते हुए और यह सोचकर कि चलो अब विवाह तो हो ही गया, हम किसी अच्छे से नाई की दुकान पर जा बैठते हैं। फिर भी इतना ध्यान ज़रूर रखते हैं कि 'शेव' घर आकर स्वयं ही बनाते हैं, क्योंकि कई नाइयों के उस्तरों की करामात हम कई लोगों के पके हुए चेहरों में देख चुके हैं। इसलिए हममें उनकी करामात देखने का साहस ही नहीं होता। परंतु, इस बार जब घर से अचानक ही शीघ्र पहुंचने का तार मिला और हम हड़बड़ाए हुए घर को चल पड़े तो जल्दी में अपना 'शेविंग सैट' यहीं भूल गए। अगले दिन घर जाकर जब 'शेव' करने की आवश्यकता पड़ी तो अपनी गलती पर खूब झुंझलाए; परंतु अब कोई और चारा न था। हम सीधे अपने पुराने नाई उस्ताद पन्नी लाल की दुकान पर जा पहुंचे। वे हमें देखकर बहुत खुश हुए और हमारी कुशल-क्षेम पूछी।

हम जानते थे कि उस्ताद पन्नी लाल की दुकान पर बूट निकाल कर नीचे टाट पर ही बैठना पड़ता है, इसलिए हमने अपने बूट उतारने शुरू किए और जब उन्हें उतार चुके. तो उस्तादजी बड़ी सहानुभूति के साथ कहने लगे, 'बाबू जी, इसकी क्या ज़रूरत थी, यह तो आपकी अपनी दुकान है।'

हमने कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहा, 'कोई बात नहीं, हम यों आराम से बैठ सकेंगे।'

'अच्छा, यदि यह बात है तो आपकी मर्जी। अच्छा, तो लीजिए, पहले हाथ धो लीजिए।'

जब उनकी आज्ञा का पालन करते हुए हम हाथ धोकर एक फटे हुए टाट पर बैठ गए तो उन्होंने अपने 'ब्रुश' को जिसमें कहने मात्र को कुछ बाल ही शेष रह गए थे, 'लक्स' की एक मैली-सी टिक्की पर घिसना शुरू कर दिया। यह सब देखकर हमने उनसे पूछा।

'उस्ताद जी,—शेविंग सोप नहीं है क्या?'

उस्ताद पन्नीलाल कुछ दबी-सी आवाज़ में बोले, 'नहीं, बाबू जी, आजकल कुछ खुश्की-सी है....मगर एक बात है बाबू जी, इसमें खशबू बहुत है। उसमें तो खशबू बिल्कुल ही नहीं होती। जब पांच आने का आता था तब तो कुछ खशबू थी पर अब दस आने का आता है, अब तो बिल्कुल भी खशबू नहीं है।' और यह कहते-कहते वे झट से अपनी साबुन की टिकिया को हमारी नाक के नज़दीक लाकर कहने लगे,—'बाबूजी जरा सूंघिये तो इस में कितनी खशबू है।'

उसकी बू से हमारी नाक भर गयी और मुंह को बिचकाते हुए हमने उन्हें अपना काम जारी रखने को कहा।

कुछ झिझकते हुए हमने उन से प्रार्थना की, 'उस्ताद जी, यदि उस्तरे को थोड़ा मांज लें तो बड़ी कृपा हो।'

उन्होंने हमारी बात मान ली और उस्तरे को पथरी पर घिसना शुरू कर दिया। जब हमारी नज़र उस टूटे हुए उस्तरे पर पड़ी, जो घिस-घिस कर धार जितना ही सूक्ष्म रह गया था, तो हमारे मन के भावों को भांप कर उस्ताद जी हमारे कुछ कहने से पहले ही बड़ी विनम्रता से बोले, 'क्या करें बाबू जी, आजकल कोई काम का उस्तरा तो मिलता ही नहीं, सब चीजों में धोखा है। मैंने यह उस्तरा अंग्रेजों के दिनों में लिया था, उन दिनों क्या बढ़िया चीज़ें मिलती थीं, जर्मनी का रिंग ब्रांड उस्तरा पचासों साल चलता था, अब आप इसी उस्तरे को देखिए, यह टूट गया था, मैंने इस में कीलें लगा कर ठीक कर लिया है। ये छोकरे (नई पीढ़ी के नाई) हंसते हैं—कहते हैं, 'उस्ताद पन्नीलाल!' तुम तो कारीगर (वहां की बोली में जूते गांठने वाला मोची) भी हो। अब आप ही बताएं—क्या मैं भूखा मर जाऊं।' यह कहते हुए उनका गला भर आया। उनको ढांढस बंधाते हुए हमने सुझाव दिया कि मेरठ में

अच्छे उस्तरे बनते हैं। वहां से मंगवा लीजिएगा। परंतु उनकी तो यह धारणा बन चुकी है कि यहां के सब माल में 'धोखा' है।

खैर जब उन्होंने हमारी शेव बनानी शुरू की तो गर्व के साथ कहने लगे, 'मुझे नैब साब ने सर्टीफिकट दिया है—हार्ड वर्किंग, एंड आनस्ट। भला बाबू जी इसमें 'आनस्ट' की क्या बात है? हम लोगों के घरों में जाते अवश्य हैं, पर उनके रुपये कोई हमारे सामने थोड़े ही पड़े होते हैं जो हम उठा लाएं।'

'उनका मतलब है कि आप अपना काम ईमानदारी से करते हैं।' हमने प्रशंसात्मक ढंग से कहा और वे तपाक से बोले, 'हां! यह तो आप ठीक कहते हैं। हम महाजनों के रिश्ते करने जाते हैं; हजारों का जेवर साथ ले जाते हैं, मजाल है जो कोई चीज़ इधर से उधर हो जाए।'

इस वार्तालाप के साथ ही वे अपना काम भी किए जा रहे थे। लेकिन, आप विश्वास कीजिए कि हमें पता भी नहीं लग रहा था कि हम शेव करवा रहे हैं। शहर के फैशनेबल सैलूनों से तथा घर में सेफ्टी रेज़र से ठोड़ी को रगड़-रगड़ कर साफ करने में जिस पीड़ा का अनुभव होता था, उसका यहां नाम भी नहीं था। बहुत से नाई कभी प्लेग, कभी हैज़े, कभी किसी के घर आग लगने और कभी किसी की मृत्यु का समाचार सुनाते हैं जिससे सुनने वाले के रोंगटे खड़े हो जाएं और उसे अपना काम करने में आसानी रहे। मगर साहब, उस्ताद पन्नीलाल ठीक इसके विपरीत हैं। हम जब कभी भी उनकी दुकान पर जाते हैं, तो कुशलक्षेम पूछने के पश्चात् वे हमें किसी के विवाह की बात सुनाते हैं, किसी के घर पुत्र उत्पन्न होने का सुखद समाचार देते हैं अथवा किसी के व्यापार में लाभ की बात सुनाते हैं। उस समय हम सोचते हैं कि यह घटनाएं सुनाकर तो हमारे रोम खूब जम जाते होंगे और तब उनके हाथ की सफाई पर बड़ा आश्चर्य होता है कि इन जमे हुए रोमों को भी वे इस खूबी से साफ करते हैं कि मन चाहता है कि हम अपने सेफ्टी रेज़र को सदा के लिए किसी कुएं में फैंक दें और प्रतिदिन उस्ताद पन्नीलाल से ही शेव बनवाया करें।

(1958)

फैज़ अहमद 'फैज़' से मुलाकात

पाकिस्तान के प्रसिद्ध उर्दू कवि फैज़ अहमद 'फैज़' पिछले दिनों भारत की यात्रा पर थे। कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय की 'बज़्में-सुखान' के निमंत्रण पर वे कुरुक्षेत्र पधारे थे। इस अवसर पर कविता, विशेष रूप से उर्दू शायरी, के संबंध में उनसे कुछ बातचीत हुई। बातचीत का सिलसिला इस प्रकार था:—

प्रश्न—'फैज़ साहब'! कवि और कविता के सृजन के संदर्भ में अंग्रेज़ी की एक उक्ति है कि 'कवि पैदा होता है' (पोइट इज़ बॉर्न) आपकी इस संबंध में क्या धारणा है। क्या इस प्रकार के फतवों ने बहुत-सी उभरती हुई प्रतिभाओं को क्षति नहीं पहुंचाई?

फैज़ साहब—'किसी हद तक बात तो यह ठीक है; क्योंकि कवि में कुछ ईश्वर-प्रदत्त गिफ्ट (प्रतिभा) तो होनी ही चाहिए, उसके बिना तो कविता हो ही नहीं सकती, लेकिन फिर भी परिश्रम भी बहुत ज़रूरी है। अभ्यास और परिश्रम के बिना भी अच्छी कविता नहीं लिखी जा सकती।'

प्रश्न—अभ्यास और परिश्रम से क्या कविता 'क्राफ्टमैनशिप' (कारीगिरी) की ओर नहीं बढ़ आती। आप कविता को आर्ट (कला) मानतें हैं या 'क्राफ्ट' (कारीगिरी)।

उत्तर—'यह दोनों ही है। मूलतः तो यह आर्ट (कला) ही है, लेकिन 'क्राफ्टमैनशिप' उसमें आनी ही चाहिए। उसके बिना भी कविता अच्छी नहीं बन पाती, अन्यथा वह मात्र लोक साहित्य ही बन कर रह जाएगी। लेकिन, 'क्राफ्टमैनशिप' से मतलब तुकबंदी भी नहीं है। (फैज़ साहब ने एक तुकबंद शेर सुनाकर अपने मत का स्पष्टीकरण किया)।

प्रश्न—कला के संबंध में यह भी कहा जाता है कि कला उसके छिपाने में है। (आर्ट लाईस इन कंसीलिंग इट)। इस संबंध में आप की क्या राय है?

उत्तर—यह बात कुछ हद तक तो ठीक ही है, क्योंकि सब बात खुलकर नहीं कही जा सकती। कविता में संकेतात्मकता और व्यंजना तो होनी ही चाहिए, इसके बिना कविता में शक्ति उत्पन्न नहीं हो पाती।

प्रश्न—अच्छा फैज़ साहब! यह बताइए, हिंदुस्तान के उर्दू लेखकों के संबंध में आपकी क्या राय है। आज यहां उर्दू में जो लिखा जा रहा है, उसके संबंध में आपकी क्या राय है?

उत्तर—राय तो अच्छी ही है। काफी कुछ अच्छा भी लिखा ही जा रहा है।

प्रश्न—कोई ऐसे श्रेष्ठ नाम आप बताइए जो आपको पसंद हों।

उत्तर—उन्होंने मुस्कराते हुए कहा, "नाम लेना तो ठीक नहीं। जो छूट जाएंगे, वे नाराज़ हो जाएंगे।'

प्रश्न—पाकिस्तान और हिंदुस्तान की आज की उर्दू कविता में काफी अंतर नज़र आता होगा। यह अंतर इन दोनों देशों के परिवेश और मूल्य-चेतना के अंतर से कहां तक संबंधित है?

उत्तर—अंतर बहुत ज़्यादा नहीं है, क्योंकि आमतौर पर दोनों देशों का परिवेश लगभग एक-सा ही रहा है और शायरी की परंपरायें भी लगभग एक-सी रही हैं। फिर भी परिवेश का कुछ अंतर तो पड़ा ही है। जैसे हमारे यहां सैनिक शासन स्थापित हुए, उन्होंने वहां की कविता को प्रभावित किया और आपके यहां जो राजनैतिक परिवर्तन हुए उसने यहां की कविता को प्रभावित किया। इस तरह का कुछ अंतर तो दोनों देशों की कविता में देखा ही जा सकता है। बाकी ज़्यादा अंतर उसमें नहीं है।

प्रश्न—आज हिंदी में, और उर्दू में भी, 'नई कविता', जिसे प्रयोगवादी कविता भी कहते रहे हैं, लिखी जा रही है, इसके संबंध में आपकी क्या राय है? क्या पाकिस्तान में भी इस तरह के कविता आंदोलन चले हैं? यदि चले हैं तो वहां उनकी क्या स्थिति है?

उत्तर—हां लिखा तो बहुत कुछ जा रहा है। जिसके मन में जो आता है और जैसा हो पाता है, लिख दिया जाता है और उसे 'नई कविता' का नाम देने की कोशिश भी की जाती है। लेकिन हमारे यहां इस तरह की कविता को विशेष आदर नहीं मिल पाया है। वहां आज भी पुरानी पद्धति की कविता ही अधिक लोकप्रिय है। वैसे भी, मैं समझता हूं कि कविता परंपरा

से जुड़ी हुई अवश्य रहनी चाहिए। उसमें नए प्रयोग तो हो सकते हैं और होने भी चाहिए, लेकिन खासतौर पर कविता में, लय की अनिवार्यता बनी ही रहनी चाहिए।

प्रश्न—फैज़ साहब! मेरा अभिप्राय 'नई कविता' के संदर्भ में 'आधुनिकता' अथवा 'आधुनिकबोध' से भी था। मैं जानना चाहूंगा कि आपकी नई कविताओं में 'आधुनिकता' का बोध कहां तक आ पाया है?

उत्तर—बिल्कुल ठीक है, मेरी नई कविताओं में भी नयापन तो है ही। नई ज़िंदगी की बातें तो उसमें आएंगी ही, आनी ही चाहिएं, आई भी हैं, लेकिन मूलतः मेरी कविता परंपरा (Tradition) से जुड़ी हुई ही है।

प्रश्न—आपकी दृष्टि में पाकिस्तान और हिंदुस्तान के उर्दू के कवि की अलग-अलग पहचान का बिंदु क्या हो सकता है?

उत्तर—पहचान हर कवि की अपनी ही होती है, पाकिस्तान या हिंदुस्तान के रूप में नहीं। साहिर, जाफी या मेरी कविताएं अपने अंदाज से खुद पहचानी जा सकती हैं कि ये किस कवि की हैं। इसमें हिंदुस्तान और पाकिस्तान की बात बीच में नहीं आती।

प्रश्न—आपके यहां अधिक लोकप्रिय कौन-सी विधा है—उपन्यास या कविता। उदाहरण के लिए हमारे यहां हिंदी में उपन्यास अधिक लोकप्रिय है।

उत्तर—हमारे यहां तो कविता ही अधिक लोकप्रिय है। ज़्यादातर पुराने ढंग की कविता।

प्रश्न—क्या आपके यहां कोई भी साहित्यकार मात्र साहित्य-जीवी बन कर रह सकता है। मेरा मतलब है कि कोई लेखक वहां केवल पुस्तकों की रायल्टी पर गुज़र कर सकता है।

उत्तर—नहीं, यह तो मुश्किल है, कुछ और काम तो करना ही पड़ता है।

प्रश्न—आपकी पुस्तक का प्रथम संस्करण कितना निकलता है-एक हजार, या दो हजार?

उत्तर—प्रायः दो हजार।

प्रश्न—और ये लगभग कितने दिनों में निकल जाती है?

उत्तर—कोई चार-पांच महीने में।

प्रश्न—इस बीच हिंदुस्तान में भी आपकी कुछ पुस्तकें छपी होंगी। कोई रायल्टी देता है या नहीं?

उत्तर—कुछ छपी हैं। रायल्टी कौन देता है—उन्होंने मुस्कराकर कहा।

प्रश्न—आप कई बार हिंदुस्तान आ चुके हैं। इस बार भी आप कई दिनों से यहां हैं। हिंदुस्तान के बारे में आपकी क्या राय है? यहां के लोगों से मिलना आपको कैसा लगा है?

उत्तर—हिंदुस्तान ने बहुत उन्नति की है, बहुत विकास हुआ है—सभी क्षेत्रों में, सभी दिशाओं में। लोग भी बहुत अच्छे लगे हैं। मैंने उनसे बहुत प्यार पाया है।

(1980)

मुंशी प्रेमचंद के उपासक भाई नानकसिंह से एक भेंट

पंजाबी के सुविख्यात कवि, उपन्यासकार तथा कहानीकार भाई नानक सिंह की कीर्ति तो पंजाबी साहित्य के प्रेमी मित्रों से कई बार सुन चुका था, किंतु उनके उपन्यास पढ़ने का सौभाग्य अभी हाल ही में प्राप्त हुआ था। उनके उपन्यासों की भाव, भाषा तथा शैली ने मेरे मानस पर बहुत गहरा प्रभाव डाला था और उन्हें पढ़ते समय मुंशी प्रेमचंद की स्मृति मेरे अंतर में रह-रह कर झूम उठती थी। जब अचानक अमृतसर आने का अवसर मिला, तब इस महान् कलाकार के दर्शन किए बिना मैं भला कैसे लौट जाता? इस अवसर को यूंही गंवा देने की इच्छा मेरी न हुई और एक मित्र को साथ लेकर मैं उनके दर्शनों के लिए चल पड़ा।

मेरा अनुमान था कि यह कलाकार भी भारत के बहुत से लेखकों की भांति दुर्बल-सा, रूखा-सा, चिंतित-सा होगा, संभवतः आर्थिक अभावों से पीड़ित, समाज के प्रति विद्रोही-सा। परंतु, उन्हें देखते ही, उनके मुख पर जो एक प्रकार का तेज व्याप्त था, तथा उनकी वाणी व स्वभाव में जो मधुरता एवं संयम था, उनसे मेरी यह शंका तत्क्षण विलीन हो गई। यद्यपि वृद्धावस्था ने अपने आगमन की सूचना दे दी है, तथापि सुंदर सुगठित देह; मुख पर मुस्कान व तेज की दीप्ति उनकी महान् प्रतिभा को आलोकित कर रही थी। उन्होंने मधुर शब्दों से हमारा स्वागत किया।

अपना परिचय देते हुए, सबसे प्रथम प्रश्न जो मैंने उनसे किया वह था—

प्रश्न—"आपकी उपन्यास कला पर किस-किस लेखक का प्रभाव अधिक पड़ा?

"किस किस का क्या?"—उन्होंने शीघ्रता से उत्तर दिया, "मुझ पर केवल मुंशी प्रेमचंद का प्रभाव पड़ा है—वास्तविकता तो यह है कि उन्होंने ही मुझे उपन्यास लिखना सिखाया।"

मैंने पूछा—"सो कैसे?"

अब उन्होंने अपने आरंभिक जीवन का तथा उपन्यासकार के जीवन का इतिहास बताना आरंभ किया—किस प्रकार वे पहले गीत-कविताएं लिखा करते थे, जिनका बड़ा मान हुआ था, और किस प्रकार एक व्यक्ति श्री मोतीलाल से उन्हें मुंशी प्रेमचंद का साहित्य पढ़ने को मिला जिसने इनके मन पर गहरा प्रभाव डाला क्योंकि वह सामाजिक वस्तु थी और ठीक इनके मन के अनुकूल थी। वे कहने लगे कि मेरे मन में इस प्रकार की लंबी कहानियां लिखने की उत्सुकता बढ़ी। तब किस प्रकार भाई मोतीलाल जी के व्यक्तित्व, तथा मुंशी प्रेमचंद के साहित्यिक जीवन व कला से प्रेरित तथा प्रोत्साहित होकर उन्होंने लिखना आरंभ किया, किस प्रकार की सरकारी तथा छपाई की कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, यह बताया। उन्होंने बड़े विश्वास के साथ कहा कि "प्रतिभा तो थी ही। जब एक हलवाई खांड से जलेबी बना सकता है, तब वह लड्डू भी बना सकता है। बस, मैंने प्रोत्साहन पाकर दिन-प्रतिदिन इस ओर अग्रसर होना आरंभ कर दिया। और फिर छापने का काम भी स्वयं ही आरंभ कर दिया।" इसके पश्चात् मैंने उनसे प्रश्न किया—

"मुंशी जी के आदर्शवाद का आप पर गहरा प्रभाव दीख पड़ता है, परंतु इसके साथ समाजवाद का जो प्रभाव आपकी रचनाओं में दीख पड़ता है, वह किसकी देन है? मुंशी प्रेमचंद को समाजवादी लेखक नहीं कहा जा सकता।"

उत्तर—मुंशी प्रेमचंद का युग भारत में समाजवाद का युग नहीं था।

प्रश्न—किंतु उनके 'गोदान' में समाजवाद का प्रभाव दिखाई पड़ता है?

उत्तर—उस समय समाज पर समाजवाद का प्रभाव पड़ने लगा था।

प्रश्न—तब आप पर यह प्रभाव किसकी देन है?

उत्तर—यह परिस्थितियों की देन है। संसार में आज जो इतनी हलचल है, किसानों के साथ, मज़दूरों के साथ, ज़मींदार और पूंजीपति जो इतना अमानुषिक व्यवहार कर रहे हैं, समाजवाद के अतिरिक्त इस समस्या का और कोई समाधान नहीं है। यहीं से मैंने अपने उपन्यासों में समाजवाद को ग्रहण

किया है।

मुंशी प्रेमचंद के दूसरे पहलू चरित्र-चित्रण की ओर आते हुए मैंने उनसे पूछा "आदर्शवाद की झोंक में मुंशी प्रेमचंद ने अपने पात्रों के चरित्र-चित्रण में कई जगह मनोवैज्ञानिक भूलें की हैं। कहीं-कहीं जब वे कथानक को संभाल नहीं पाते तो पात्रों की हत्या भी कर डालते हैं! आपके उपन्यास 'कटी पतंग' में भी यही बात दिखाई पड़ती है। ब्रजमोहन के चरित्र का परिवर्तन मनोवैज्ञानिक दृष्टि से ठीक नहीं कहा जा सकता। उसे समाजवादी नेता बनाने में शीघ्रता की गई है तथा वह उसके सांस्कारिक स्वभाव के अनुकूल भी नहीं बैठता। अंत की ओर कथानक की गति बहुत तीव्र है। आवश्यकता से अधिक।

उत्तर—मैं मानता हूं कि मैंने वहां शीघ्रता की है। दूसरे, बात यह है कि जब लोहा गरम होता है, उसे किसी भी भांति ढाला जा सकता है। ब्रजमोहन की आत्मा उस समय द्रवित थी, इसलिए उसका नेता बनना बहुत अस्वाभाविक नहीं।

प्रश्न—परंतु मैं समझता हूं, कि ऐसा करने से उसके चरित्र की हत्या हो गई है।

उत्तर—बात यह है कि कई बार हम लिखते चले जाते हैं और कहानी का सूत्र बहुत फैल जाता है। तब उसे बटोरना कठिन हो जाता है। मन में इच्छा होने लगती है, अब इसे समाप्त करना चाहिए। यही बात वहां हुई। किंतु, इसका यह तात्पर्य नहीं कि मैं उसका चरित्र ठीक ढंग से विकसित ही नहीं कर सकता था।

इस विषय पर मेरी और अधिक तीखी आलोचना करने पर उन्होंने वचन दिया कि "मैं उस भाग को फिर से लिखूंगा और ब्रजमोहन के चरित्र को परिस्थितियों से विकसित होते दिखाऊंगा।" उसे प्रकाशित होने से पूर्व मेरी अप्रूवल की बात कह कर उन्होंने मुझे बड़ा लज्जित किया।

प्रश्न—इसके अतिरिक्त आपने नारी पात्रों को उठाने का प्रयत्न किया है, क्या यह भी मुंशी जी का प्रभाव है।

उत्तर—भारतीय समाज में नारी का स्थान बहुत गिर गया है। किंतु, देश की माता का जब तक उत्थान नहीं होता, तब तक कोई भी जाति, कोई भी देश प्रगति नहीं कर सकता। इसलिए भारत में नारी को वही प्राचीन

'माता' का गौरव पद जब तक नहीं दिया जाएगा तब तक देश उन्नति नहीं कर सकता। यही कारण है कि मैंने नारी को महान् दर्शाया है। वह महान् है और मैंने उसकी महानता की इच्छा की है।

प्रश्न—परंतु इसका यह अर्थ नहीं, कि पुरुष को गिराकर नारी को उठाने का प्रयत्न किया जाए। "कटी पतंग" में ही ब्रजमोहन को आपने इतना गिरा दिया है, सम्भवतः कामिनी को उठाने के लिए।

उत्तर—नहीं,—यह बात नहीं है। मैंने जान-बूझ कर पुरुष को गिराने का प्रयत्न नहीं किया। मैंने पुरुष की "फितरत" (स्वभाव, प्रकृति) का विश्लेषण किया है। उसका चित्त अस्थिर बेपैंदे का लोटा होता है, परंतु नारी के चित्त में स्थिरता प्राकृतिक रूप से वर्तमान है। जब वह पांच वर्ष की होती है, उसमें मातृत्व का भाव आ जाता है। इसलिए गम्भीरता, स्थिरता आदि भाव सदा उसके साथ रहते हैं। पुरुष तो उसके लिए बच्चा ही रहता है। हां, पुरुष को मैंने उस स्थान पर अवश्य गिराया है, जहां उसने अपने अहं तथा स्वार्थ के कारण नारी की उपेक्षा की है, उसके साथ अन्याय किया है।

इसके बाद उन्होंने बतलाया कि समाज में वेश्याओं के जीवन के लिए भी उन्होंने पुरुष को ज़िम्मेदार ठहराया है, तथा विवाह को पुरुष के लिए वासना तृप्ति का एक लाईसेंस बताया। उनके अनुसार यह पुरुष की कठोरता है।

उन्होंने स्वीकार किया कि वेश्याओं की समस्या पर उन्होंने अपने उपन्यासों में जो प्रकाश डाला है, वह भी किसी सीमा तक मुंशी प्रेमचंद के 'सेवासदन' का प्रभाव कहा जा सकता है।

प्रश्न—आपके उपन्यास अधिकतर सामाजिक हैं। इन समस्याओं के अतिरिक्त आपने और किन-किन समस्याओं पर अधिक बल दिया है?

उत्तर— मैं तो मानवता का पुजारी हूं। मानवता से संबंधित जब कोई समस्या मेरे सामने आती है, मैं लिखने के लिए विवश हो जाता हूं। विभाजन से पूर्व मैं हिन्दू मुस्लिम एकता पर लिखता रहा। परंतु, उस दारुण हत्याकांड-अनाचार को देखकर जब मेरे स्वप्न भंग हो गए तब मेरी आत्मा इतनी व्याकुल हो उठी कि मुझे इसी स्थिति पर एक साथ चार उपन्यास और कई कहानियां लिखनी पड़ीं।

प्रश्न—आपने मुंशी प्रेमचंद की भांति सामयिक समस्याओं पर अधिक

बल दिया है। मानव जीवन की शाश्वत समस्याओं पर, जिन पर साहित्य की स्थिरता आधारित हो, कम ध्यान दिया है। क्या इन एक कालीन समस्याओं के बीत जाने पर आपके साहित्य का मूल्य कम नहीं हो जाएगा?

उत्तर—साहित्यकार केवल साहित्यकार ही नहीं होता बल्कि वह किसी सीमा तक इतिहासकार का कार्य भी निभाता है। प्राचीन साहित्य से उस समय का इतिहास बनाया जाता है। समाज में घट रही घटनाओं से लेखक अपना मुख मोड़ कर नहीं चल सकता। उसे समाज के उत्थान का ध्यान रखना होता है। भला विभाजन की कराल परिस्थितियों को देखकर क्या कोई भी सहृदय लेखक अथवा कवि मौन रह सकता था? फिर ऐसी बात नहीं कि मैंने शाश्वत समालोचना पर ध्यान नहीं दिया—वह तो कहीं भी ढूंढ़ने से मिल सकती है।

भाई नानक सिंह के साथ अपने लगभग 1.30 घंटे के वार्तालाप में मैंने इस बात पर ध्यान दिया कि वे बहुत ही शुद्ध तथा परिमार्जित हिंदी बोलते हैं। इससे थोड़ा साहस बटोर कर ज़रा दबती-सी आवाज़ में मैंने अनुरोध किया—"आप अपना कुछ समय हिन्दी को भी क्यों नहीं समर्पित करते। आप तो बहुत शुद्ध हिन्दी का प्रयोग करते हैं। हिंदी में आपका बड़ा मान होगा। राष्ट्रभाषा तथा देश की भी इससे अधिक सेवा हो सकेगी।"

मैं आशंकित दृष्टि से उनकी ओर देख रहा था, किन्तु मेरे हर्ष का ठिकाना न रहा जब उन्होंने बताया कि अब वे थोड़ा नहीं बल्कि सारा जीवन ही हिन्दी की सेवा में लगाने का संकल्प कर चुके हैं। मुझे यह जान कर और भी हर्ष हुआ कि उनका अगला उपन्यास हिन्दी में ही निकल रहा है।

"तब तो हिन्दी का बड़ा सौभाग्य है। हिन्दी उपन्यास सम्राट् मुंशी प्रेमचंद हिन्दी को उर्दू से मिले; अब एक नए मुंशीजी हमें पंजाबी से बने बनाए मिल रहे हैं। इससे अधिक सौभाग्य हमारा और क्या हो सकता है? आज हिन्दी को सफल उपन्यासकारों की बड़ी आवश्यकता है।" हर्ष के इस उन्माद में मैं यह भी कह गया कि अपनी इस भेंट का शीर्षक भी मैं यही दूंगा—"हिन्दी में एक नए मुंशी प्रेमचंद।"

परन्तु, मेरे इन शब्दों से जैसे उन्हें बड़ी चोट पहुंची। उनकी उदासीनता देखकर मैं सहम गया। "देखिए, यह तो आप मुझे गाली दे रहे हैं। ग्लानि का अनुभव करते हुए उन्होंने कहा, "मुंशी प्रेमचंदजी से मेरी बराबरी करके

आप मेरे साथ अन्याय कर रहे हैं। कहां मुंशीजी मेरे देवता, मेरे भगवान्, मेरे गुरु और कहां मैं? मैं तो उनके चरणों की धूलि भी नहीं।" उन्हें इस बात का भी बहुत दुख था कि वह प्रेमचंदजी से भेंट न कर सके। "मैं तो आशा ही करता रह गया," बड़े वेदनापूर्ण मर्मभेदी शब्दों में उन्होंने कहा।

"अच्छा तब क्यों न इसका शीर्षक हो मुशी प्रेमचन्द के उपासक?" मैंने थोड़ा सोचकर कहा।

यह सुनकर वे बहुत प्रसन्न हुए—"ऐसा आप मेरे लिए कह सकते हैं।"

बहुत समय मैंने उनका लिया। क्षमा-याचना करते हुए हम इस भाव से कि हिन्दी को एक सधा हुआ समाज-सुधारक उपन्यासकार मिल गया, पुलकित होते हुए घर की ओर चल पड़े। मुझे आशा है कि हिन्दी-प्रेमी, मुंशी प्रेमचंद के इस प्रेमी महान् उपन्यासकार को समुचित आदर प्रदान करेंगे और उन्हें प्रोत्साहित करेंगे जिससे हिन्दी की सेवा में अपने जीवन लगाने के संकल्प को वे पूरा कर सकें और हिन्दी साहित्य का कोष भी उससे समृद्ध हो।

(1957)

• • •

अच्छा साहित्य लिखना और अच्छे साहित्य की प्रशंसा करना उनके खमीर में नुमायां तौर पर शामिल है। डॉ० गोयल साहित्य की प्रत्येक विधा को पूरी दयानत व ईमानदारी और गहराई के साथ तोलने परखने के बाद ही उस पर कलम उठाते हैं।

डॉ० जयभगवान गोयल ने बहुत-सी नायाब किताबें लिखकर और विशेषतः गुरुमुखी लिपि में उपलब्ध हिन्दी की अमूल्य साहित्य निधि से हिन्दी साहित्य के ख़जाने को मालामाल कर दिया है। उन्होंने साहित्यिक जगत में ऐसे-ऐसे झण्डे गाड़े हैं जो चिन्तन और खोज करने वालों के लिए निशाने राहे मंजिल और मील का पत्थर हैं। डॉ० गोयल हिन्दी साहित्य के नीले आकाश पर अपनी पूरी आबोताब के साथ चमकने और दमकने वाले उज्ज्वल नक्षत्र हैं। उन्होंने अपनी बेजोड़ प्रतिभा से साहित्य की दुनिया में ऐसे-ऐसे कीर्तिमान स्थापित किए हैं कि जिन्होंने उन्हें महान लेखकों और साहित्यकारों की अग्रिम पंक्ति में रहती दुनिया तक प्रतिष्ठापित कर दिया है। डॉ० जयभगवान गोयल द्वारा रचित साहित्य हिन्दी साहित्य की एक अनमोल धरोहर है।

'अंबवा की डार पे कूके कोयलया' में डॉ० गोयल के कुछ मौलिक निबन्ध, रिपोर्ताज़, रेखाचित्र, व्यंग्य लेख, संस्मरण, यात्रा विवरण एवं भेंट वार्त्ताएं संकलित हैं और इन सभी में उनके व्यक्तित्व एवं उनकी बहुआयामी सर्जनात्मक प्रतिभा और विविध रूपात्मक अभिव्यक्ति-शिल्प की पूरी आबोताब और चमक-दमक प्रतिबिम्बित है।

बालकृष्ण मुज्जतर
(मुजफ्फर हुसैन बर्नी अवार्ड से सम्मानित
प्रख्यात साहित्यकार)

सर्वश्रेष्ठ साहित्य का प्रतीक
आत्माराम एण्ड संस
दिल्ली लखनऊ